नई दिल्ली
रविवार, 15 जून, 2025, मूल्य-15.00
राष्ट्रीय
वर्ष-7 अंक-34 पृष्ठ- 8
RNI: DELHIN / 2018 / 76679
Postal Reg. No. DL(C)-05/1425/2025-27
License To Post Without Pre Payment No. U(C)-164/2025-27
Magazine Post Reg. No. DL(DS)-31/MP/25-26-27

संडे नवजीवन

Freedom is in Peril, Defend it with all your might Jawaharlal Nehru

जब सवाल चुनाव आयोग से पूछे जाएं और जवाब भाजपा से मिले, तो संदेह का गहराना लाजिमी 3
चिनाब रेलवे ब्रिज से घाटी को फायदा लेकिन जम्मू को उठाना पड़ेगा घाटा 4

मुश्किल दिन 8

www.navjivanindia.com | @navjivanindia | www.nationalheraldindia.com | www.qaumiawaz.com

पाकिस्तान पर नए सिरे से सोचने की ज़रूरत

शब्दों की तलवार घुमाने के बजाय भारत को वैश्विक कूटनीतिक सहमति की बड़ी लाठी लेकर चलना चाहिए

अशोक स्वैन

मई 2025 में पाकिस्तान के साथ चार दिन की सैन्य भिड़ंत ने न सिर्फ भारत की पारंपरिक सैन्य रणनीति की सीमाओं को उजागर कर दिया, बल्कि दक्षिण एशिया की सुरक्षा संरचना में आए गहरे और टिकाऊ बदलावों की भी परतें खोल दीं। चीन अब पाकिस्तान का स्पष्ट और आक्रामक सैन्य संरक्षक बन चुका है, और भारत की वर्षों से चली आ रही कूटनीतिक बढ़त लगातार घटती जा रही है। बदलती ज़मीनी हकीकतों से अब भारत को सीधे टकराना होगा।

पहलगाम में आतंकवादी हमले से शुरू हुआ संघर्ष कई मायनों में विरोधी की सैन्य क्षमताओं का अंदाजा लगाने वाला था। लंबे समय से अपने पाकिस्तानी समकक्ष से बेहतर समझी जाने वाली भारतीय वायु सेना ने खुद को रक्षात्मक स्थिति में पाया। जैसा कि भारत के चीफ ऑफ डिफेंस स्टाफ अनिल चौहान ने सिंगापुर में कबूल किया, वायु सेना को करीब दो दिनों तक जमीन पर ही रहना पड़ा। भारत के फ्रांस में बने राफेल और रूसी सुखोई को चीनी मूल के जे-10सी जेट विमानों से चुनौती मिली और भारत के कुछ लड़ाकू विमानों को गिरा दिया गया। बीजिंग से मिल रहे सैटेलाइट इंटेलिजेंस और लॉजिस्टिक सपोर्ट के बूते पाकिस्तान ने अपनी

ऑपरेशन पाकिस्तान के पूर्व विदेशमंत्री बिलावल भुट्टो जरदारी; लंदन गया भारतीय प्रतिनिधिमंडल; भारत के सीडीएस अनिल चौहान और चीन निर्मित लड़ाकू विमान जेएफ-17 और पीएल-15 मिसाइल जिनका इस्तेमाल पाकिस्तान ने भारत के खिलाफ हालिया झड़प में किया।

विकसित हो रही मल्टी-डोमेन क्षमताओं, रियल-टाइम आईएसआर (इंटेलिजेंस, सर्विलांस, रिकोनैसेंस), सटीक मिसाइल हमलों और प्रभावी वायु रक्षा क्षमता का प्रदर्शन किया।

चीन का समर्थन कोई एक बार का मामला नहीं था। इसने पाकिस्तान को पांचवीं पीढ़ी के स्टील्थ जे-35ए के 40 विमानों की डिलीवरी में तेजी ला दी है। इसका पहला बैच इसी साल के अंत में आ जाएगा। पाकिस्तान की सेना केजे-500 अवाक्स विमान और एचक्यू-19 वायु रक्षा प्रणाली भी खरीद रही है। बीजिंग न केवल हार्डवेयर निर्यात कर रहा है, बल्कि वह पाकिस्तान की सेना में अपनी कमान संरचना और रणनीतिक योजना तैयार करने की व्यवस्था भी लागू कर रहा है। चीन-पाकिस्तान गठबंधन का यह नया दौर भारत के साथ समानता के बारे में न होकर संयुक्त क्षमता-निर्माण के जरिये विषमता को कम करने के बारे में अधिक है।

इस हकीकत के मद्देनजर भारत अब पाकिस्तान को आतंकवाद को हथियार के तौर पर इस्तेमाल करने से रोकने के लिए छोटी, दंडात्मक सैन्य कार्रवाई पर निर्भर नहीं रह सकता। दिखावटी सैन्य कार्रवाई से किसी तरह का खौफ पैदा तो नहीं ही होगा, यह पाकिस्तान के सैन्य प्रतिष्ठान का ही काम आसान करेगा। भारत के हर हमले से पाकिस्तान की राष्ट्रीय सुरक्षा में सेना का महत्व साबित होता है। यह इस्लामाबाद को बीजिंग के साथ गहरे रिश्तों को सही ठहराने में मदद करता है और यह बाहरी खतरा पाकिस्तानी सेना को घरेलू आर्थिक संकटों से ध्यान भटकाने में मददगार होता है। मई का 'युद्ध' पारंपरिक मोर्चों पर नहीं लड़ा गया था - यह एक डिजिटल युद्ध, प्रचार युद्ध, धारणाओं का युद्ध था। पाकिस्तान ने जल्दी ही इसमें जीत का दावा कर दिया और चीन के मीडिया ने उन दावों की पुष्टि की और नरेन्द्र मोदी की आक्रामक भंगिमा से आशंकित विश्व समुदाय ने इसे और व्यापक कर दिया।

डॉनल्ड ट्रंप के दूसरे कार्यकाल में अमेरिका ने भारत की बेचैनी बढ़ा दी है। नई दिल्ली के साथ खड़े होने के बजाय ट्रंप सार्वजनिक बयानों में भारत और पाकिस्तान को एक साथ जोड़कर संघर्ष विराम करने के लिए अपनी पीठ थपथपा रहे हैं। ऐसी स्थिति में भारत खुद को खतरनाक रूप से अलग-थलग पाता है क्योंकि कभी रणनीतिक तौर पर भारत के साथ चट्टान की तरह खड़ा रहने वाला रूस अब चीन की तरफ और ज्यादा झुक गया है। यहां तक कि जापान और ऑस्ट्रेलिया जैसे क्वाड सहयोगियों ने भी भारत के साथ कोई ठोस एकजुटता नहीं दिखाई और नई दिल्ली से संयम बरतने की अपील की। यह कूटनीतिक अलगाव अचानक नहीं आया है; यह एक दशक लंबी विदेश नीति का नतीजा है, जिसने शासन कला की जगह दिखावे को ज्यादा जरूरी समझा। भारत ठोस, तथ्य-आधारित तरीके से दुनिया को यह समझाने में विफल रहा है कि वैश्विक आतंकवाद में पाकिस्तान की भूमिका है। इसने गुटनिरपेक्ष आंदोलन और जी-77 जैसे मंचों पर अपने नेतृत्व वाले दर्जे को हाथ से निकल जाने दिया। ग्लोबल साउथ में अपने पारंपरिक सहयोगियों को नजरअंदाज करते हुए भारत ने अमेरिका का पिछलग्गू होने का विकल्प चुना है।

ऐसी ही स्थिति में कूटनीति का दामन थामना व्यवहार और दीर्घकालिक लाभ, दोनों के लिहाज से बेहतर होता है। 2008 के मुंबई हमलों के बाद डॉ. मनमोहन सिंह का सिद्धांत एक उपयोगी उदाहरण प्रस्तुत करता है। उनके नेतृत्व में भारत ने तत्काल सैन्य जवाबी कार्रवाई से परहेज किया। इसके बजाय पाकिस्तान की संलिप्तता के पक्ष में ठोस मामला बनाने पर ध्यान केन्द्रित किया, कूटनीतिक और आर्थिक शिकंजा कसने के लिए इंटरपोल, फाइनेंशियल ऐक्शन टास्क फोर्स (एफएटीएफ) और संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के माध्यम से काम किया। आज वैसी ही रणनीति को अपनाना और भी ज्यादा अहम हो जाता है। हाल ही में आतंकवाद को वित्तीय तरीके से पोषित करने के लिए पाकिस्तान की निगरानी करने वाले एफएटीएफ को नई खुफिया जानकारी और वहां लगातार लॉबी करके उसे फिर से सक्रिय करना चाहिए। भारत को पाकिस्तान की आईएसआई और बांग्लादेश, अफगानिस्तान और कश्मीर में सक्रिय समूहों के बीच सीधे रिश्तों से जुड़े रिकॉर्ड को तैयार करके उन बहुराष्ट्रीय संस्थाओं के सामने डोजियर रखना चाहिए जहां चीन का वीटो सच को दबा न सके।

भारत को पाकिस्तान प्रायोजित आतंकवाद से प्रभावित देशों के वैश्विक गठबंधन का नेतृत्व करना चाहिए, जिसमें ईरान से लेकर अफगानिस्तान की तालिबान सरकार और यहां तक कि सऊदी अरब भी शामिल हैं।

शेष पेज 2 पर ▸

> भारत का यह कूटनीतिक अलगाव अचानक नहीं आया; यह एक दशक लंबी विदेश नीति का नतीजा है, जिसने शासन कला की जगह दिखावे को ज्यादा जरूरी समझा। भारत ठोस, तथ्य-आधारित तरीके से दुनिया को नहीं समझा सका कि वैश्विक आतंकवाद में पाकिस्तान की भूमिका है

भारत के लिए कब मुंह खोलेंगे मोदी

अमेरिका ऐसा 'दोस्त' है, जिस पर भरोसा नहीं किया जा सकता कि कब कैसा रुख अपनाएगा और इसका उदाहरण हाल-फिलहाल देखने को भी मिला है

आशीष रे

अमेरिकी राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप भारत के प्रति आक्रामक, या कहें कि काफी हद तक दुश्मनों जैसा सलूक कर रहे हैं और अपने प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी हैं कि होंठ सिले हुए हैं। इससे मोदी के समर्थक भी हताश-निराश हैं; उन्हें लग रहा है कि वे जिस व्यक्ति पर उसकी जिस खासियत के लिए यकीन कर रहे थे, वह छलावा के अलावा कुछ भी नहीं था, क्योंकि मोदी ने कभी किसी ताकतवर देश के नेता के सामने साहस नहीं दिखाया। ऑपरेशन सिंदूर के फौरन बाद 14 जून 2025 को वाशिंगटन डी.सी. में होने वाले अमेरिकी सैन्य दिवस समारोह में शामिल होने के लिए पाकिस्तान के सेना प्रमुख फील्ड मार्शल असीम मुनीर को अमेरिकी न्योता भारत के लिए एक और बड़ा झटका है।

ट्रंप व्यापार को सामूहिक विनाश के औजार के तौर पर इस्तेमाल कर रहे हैं। कृषि और ऑटोमोबाइल जैसे क्षेत्रों में भारतीय टैरिफ में कमी पर बात चल रही है - दोनों ही भारत के लिए नुकसानदेह होंगे। अमेरिकी कृषि उत्पादों के लिए भारतीय बाजार खोलने से भारतीय किसानों को नुकसान होगा। सस्ती अमेरिकी कारें भारतीय मोटर निर्माताओं का जीना मुश्किल कर देंगी। विदेश विभाग में दक्षिण एशिया के लिए सहायक मंत्री के अहम पद के लिए ट्रंप द्वारा नामित पॉल कपूर ने भारत और पाकिस्तान के प्रति समान नजरिया रखने की बात कही है।

जब मैक्सिको और कनाडा व्यापार और टैरिफ पर ट्रंप के सामने नहीं अड़े, तो ट्रंप पीछे हट गए। चीन, जिसकी प्रगति और समृद्धि काफी हद तक अमेरिका के लिए विनिर्माण और निर्यात पर आधारित है, वह पीछे नहीं हटा। ट्रंप ने सोशल मीडिया पर घोषणा की, 'चीन के साथ हमारी डील हो गई है।' लेकिन सीएनएन ने टिप्पणी की- 'ट्रंप की भाषा में, चीन इस समझौते के बाद अमेरिका के साथ पहले की तुलना में ज्यादा निष्पक्ष व्यवहार नहीं कर रहा।' अमेरिका का दूसरा सबसे बड़ा व्यापारिक साझीदार चीन 10 से 55 फीसद तक शुल्क का भुगतान करेगा, जबकि अमेरिकी व्यापार के दृष्टिकोण से 145 फीसद, जैसी कि ट्रंप ने पहले घोषणा की थी।

भारत ने ट्रंप के उस बयान का खंडन किया है जिसमें कहा गया था कि भारत द्विपक्षीय शुल्क शून्य करने पर सहमत हो गया है। 9 जुलाई की समयसीमा से पहले अंतरिम सहमति पर पहुंचने के लिए भारत की ओर से यही सब सुनने को मिला है, जिसके तहत अमेरिका को भारत से होने वाले सभी निर्यातों पर 26 फीसद शुल्क लगाया जाएगा। यह भारत द्वारा अब तक दिए जा रहे औसत शुल्क से काफी ज्यादा होगा और अमेरिका से होने वाले आयात से मिलने वाले शुल्क से काफी कम।

ट्रंप को जब भी मौका मिलता है, वह इस बात का बखान करते हैं कि उन्होंने भारत और पाकिस्तान के बीच हालिया सैन्य तनातनी में कैसे संघर्ष विराम कराया। भारतीय विदेश मंत्रालय ने इससे इनकार किया है। लेकिन पाकिस्तान इसके लिए बार-बार ट्रंप की तारीफ कर रहा है और उन्हें धन्यवाद दे रहा है। पाकिस्तान को अलग-थलग करने के लिए भारत के बहु-प्रतिनिधिमंडलीय हमले का मुकाबला करने के लिए एक पाकिस्तानी प्रतिनिधिमंडल ने न केवल अमेरिका में, बल्कि लंदन, ब्रुसेल्स और पेरिस में भी इस बात पर जोर दिया। पाकिस्तानी प्रतिनिधिमंडल ने दावा किया कि ट्रंप ने संकेत दिया था कि वह कश्मीर पर दोनों पक्षों के बीच किसी तटस्थ स्थान पर मध्यस्थता करेंगे। यह सुनना अमेरिकी राष्ट्रपति के लिए काफी सुखद होगा। उधर, गौर करने वाली बात है कि भारतीय प्रधानमंत्री ने एक शब्द भी नहीं कहा है।

'बिजनेस वर्ल्ड' की रिपोर्ट के मुताबिक वर्ल्ड लिबर्टी फाइनेंशियल, जिसमें ट्रंप के बेटे एरिक और डॉनल्ड जूनियर के अलावा उनके दामाद जेरेड कुशनर बहुसंख्यक शेयरधारक हैं, ने हाल ही में पाकिस्तान क्रिप्टो काउंसिल के साथ एक करार पर दस्तखत किए हैं। इसके अलावा, ट्रंप की खासी दिलचस्पी 'रेयर अर्थ मेटेरियल' में है, जिसकी पाकिस्तानी प्रांत बलूचिस्तान में कोई कमी नहीं। ऐसी खबरें हैं कि चीन और रूस दोनों की ही पाकिस्तान को ब्रिक्स में जगह देने में दिलचस्पी है जबकि ट्रंप चाहते हैं कि भारत ब्रिक्स से बाहर हो जाए। इसलिए 7-8 जुलाई, 2025 को होने वाला ब्रिक्स शिखर सम्मेलन काफी अहम है। इसमें प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के शामिल होने की उम्मीद है।

पूर्वी पाकिस्तान को आजाद कराने और बांग्लादेश को जन्म देने के लिए 1971 के भारत-पाक युद्ध में भारत को सोवियत संघ द्वारा दिया गया ऐतिहासिक समर्थन अब अतीत की बात हो गई है। कह सकते हैं कि यह अब इतिहास बन चुका है। फिर भी, भारतीय विदेश मंत्री सुब्रह्मण्यम जयशंकर का मानना है कि भारत-रूस संबंध 'विश्व राजनीति में अचल' है। 2014 से मोदी-आधारित भारतीय विदेश नीति के परिणामस्वरूप रूस और पाकिस्तान के बीच संयुक्त सैन्य अभ्यास हुए हैं; और रूस ने उसे एमआई-35 अटैक हेलीकॉप्टर, एंटी-टैंक सिस्टम और वायु रक्षा उपकरण बेचे हैं।

***

सामूहिक तौर पर भारतीयों को बाहर करने और ऐसे ही और भी लोगों को भारत भेजने की धमकियों के बाद हाल की एक घटना गौर करने वाली है। एक व्यक्ति को वापस भारत भेजा जा रहा था और नेवार्क हवाईअड्डे पर उसे हथकड़ी लगाकर जमीन पर गिरा दिया गया। अमेरिकी अधिकारियों का आरोप है कि वह अवैध अप्रवासी था। वैसी स्थिति में उसे वापस भेजना तो ठीक है, लेकिन क्या उसे सार्वजनिक रूप से ऐसे अपमानित करना चाहिए था?

शेष पेज 2 पर ▸

दोनों फोटो: जेटी इमेजेज

कमजोरी विवादास्पद मुद्दों पर अमेरिकी राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप कुछ भी कहते रहते हैं और प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी चुप्पी साधे रहते हैं।

> पाकिस्तानी प्रतिनिधिमंडल ने दावा किया कि ट्रंप ने संकेत दिया था कि वह दोनों पक्षों के बीच किसी तटस्थ स्थान पर मध्यस्थता करेंगे। यह सुनना अमेरिकी राष्ट्रपति के लिए काफी सुखद होगा। उधर, गौर करने वाली बात है कि भारतीय प्रधानमंत्री ने एक शब्द भी नहीं कहा है

पाकिस्तान पर नए सिरे...

पेज एक का शेष

पाकिस्तान को न केवल भारत की समस्या के रूप में बल्कि दुनियाभर में चरमपंथ को बढ़ावा देने वाले देश के रूप में पेश करना चाहिए। इस्लामाबाद पर दबाव डालने के लिए नई दिल्ली को उन बिंदुओं पर दबाव बनाना चाहिए जहां पाकिस्तान को सबसे ज्यादा दर्द होता हैः विदेशी सहायता, व्यापार पहुंच और क्रेडिट रेटिंग। नई दिल्ली को अपनी आर्थिक शक्ति का भी इस्तेमाल करना चाहिए। भारत दुनिया की चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है और पाकिस्तान की तुलना में ग्लोबल साउथ को देने के लिए उसके पास बहुत कुछ है। तरजीही व्यापार समझौतों, डिजिटल बुनियादी ढांचा बनाने में सहयोग और जलवायु को वापस बेहतर बनाने में मदद करके भारत बांग्लादेश से लेकर श्रीलंका तक में पुराने प्रभाव को फिर से पा सकता है और विश्वसनीय और लोकतांत्रिक विकल्प पेश करके पाकिस्तान-चीन की पहुंच की काट कर सकता है।

इसके साथ ही भारत को पाकिस्तान के रक्षा उत्थान में चीन की भूमिका को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए। बीजिंग की रणनीतिक चुप्पी, इस्लामाबाद को उसकी सैन्य मदद और सैन्य-औद्योगिक संदर्भों में पाकिस्तान को प्रयोगशाला के तौर पर इस्तेमाल करने की आलोचना करनी चाहिए। इसके खिलाफ तलवारें लहराकर नहीं बल्कि कानूनी और कूटनीतिक माध्यमों से मोर्चा खोलना चाहिए। भारत को अपने खिलाफ इस्तेमाल की जा रही चीनी हथियार प्रणालियों के बारे में बहुपक्षीय संस्थाओं में औपचारिक शिकायत दर्ज करनी चाहिए, हथियार नियंत्रण मानदंडों के उल्लंघन की जांच की मांग करनी चाहिए और वैश्विक मंचों पर सीपीईसी (चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारा) के बुनियादी ढांचे की दोहरे इस्तेमाल की प्रकृति को उजागर करना चाहिए। चीन के 'शांतिपूर्ण उदय' के नैरेटिव को बदलकर बीजिंग द्वारा दक्षिण एशिया में राज्य प्रायोजित छद्म युद्ध को बढ़ावा देने की ओर ले जाना चाहिए।

घरेलू स्तर पर भी भारत को दिए जा रहे संदेश के मूल भाव को बदलना चाहिए। उसे बताना चाहिए कि सैन्य संयम का मतलब कमजोरी नहीं, बल्कि रणनीतिक परिपक्वता है। भारत की जनता को बताया जाना चाहिए कि हवाई हमले नहीं, बल्कि शासन कौशल ही वह तरीका है जिससे महाशक्तियां दीर्घकालिक खतरों से निपटती हैं। 'पाकिस्तान को सबक सिखाने' के नाटकीय दावों के बजाय भारत को यह दिखाना चाहिए कि वह वैश्विक जनमत, आर्थिक दबाव और अंतरराष्ट्रीय वैधता के युद्धक्षेत्र को कैसे आकार दे रहा है।

चीन-पाकिस्तान गठजोड़ दिन-प्रति-दिन व्यापक हो रहा है और इसका उद्देश्य भारत को दो मोर्चों पर सुरक्षा दुविधा में फंसाना है। लेकिन यह गठजोड़ अजेय नहीं। पाकिस्तान आर्थिक रूप से कमजोर, राजनीतिक रूप से अस्थिर और कूटनीतिक रूप से संदिग्ध बना हुआ है। वहीं, चीन की वैश्विक छवि खराब हो रही है, इसकी अर्थव्यवस्था में मंदी के संकेत दिख रहे हैं और इसके बीआरआई (बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव) को बढ़ते प्रतिरोध का सामना करना पड़ रहा है। भारत को इन दरारों का फायदा उठाना चाहिए, सैन्य तमाशे के जरिये नहीं, बल्कि एक निरंतरता वाली व्यवस्थित कूटनीति के जरिये।

2025 में भारत चौराहे पर खड़ा है। वह तू-तू मैं-मैं के रास्ते पर आगे बढ़ सकता है जो उसके विरोधियों के लिए ही फायदेमंद है या फिर वह कूटनीति, अंतरराष्ट्रीय कानून और वैश्विक गठबंधनों पर आधारित एक दीर्घकालिक रणनीति का रास्ता अख्तियार कर सकता है। यह ऐसी रणनीति होगी जो इसकी विश्वसनीयता और वैश्विक स्थिति को बहाल कर सकती है। चीख-चीखकर छाती ठोकने के बजाय, भारत को शांत-संयत होकर बोलना चाहिए और वैश्विक कूटनीतिक सहमति के बेहतर विकल्प को अपनाना चाहिए। ■

अशोक स्वैन स्वीडन के उप्साला विश्वविद्यालय में पीस एंड कॉन्फ्लिक्ट रिसर्च के प्रोफेसर हैं।

भारत के लिए कब मुंह खोलेंगे मोदी

पेज एक का शेष

अमेरिका और भारत के बीच आधिकारिक तौर पर 'व्यापक वैश्विक रणनीतिक साझेदारी' है। इस समझौते के मुख्य छह आधारों में से एक है दोनों देशों के लोगों के बीच के रिश्तों को बढ़ावा देना।

अमेरिका ने साफ कर दिया है कि अगर सोशल मीडिया पर किसी व्यक्ति का कोई भी पोस्ट अमेरिकी राष्ट्रपति या प्रशासन की नीतियों की आलोचना करने वाला पाया जाता है, तो उस व्यक्ति को वीजा देने से मना किया जा सकता है या अमेरिका से निकाल बाहर किया जा सकता है। 1950 के दशक में एक अतिवादी अमेरिकी सीनेटर जोसेफ मैकार्थी और उनके समर्थकों ने कुछ अमेरिकियों के खिलाफ तीखा हमला किया और उनपर कम्युनिस्टों से संबंध रखने का आरोप लगाया था। इससे वर्तमान जैसा ही भय का माहौल पैदा हो गया। आखिरकार, मैकार्थी के आरोप निराधार पाए गए। सीनेट ने उनकी निंदा की।

दोनों देशों के उच्च शिक्षा संस्थानों के बीच सहयोग को मजबूत करने को दोनों देशों के नागरिकों के बीच बेहतर तालमेल के साधन के रूप में प्रचारित किया गया। हालांकि ट्रंप की इस उद्देश्य में कोई दिलचस्पी नहीं दिखती। उनकी 'अमेरिका फर्स्ट' वाली आव्रजन नीति भारतीय छात्रों को परेशान करने, उन्हें अमेरिका छोड़कर चले जाने के लिए और अमेरिकी विश्वविद्यालयों में प्रवेश पाने वालों को वीजा देने में देरी करने या इससे इनकार करने की हद तक चली गई है। मोदी और उनके मंत्री चुपचाप देखते रहे हैं; इस प्रकार वे अपने पीड़ित देशवासियों के पक्ष में खड़े होने में विफल रहे हैं।

अमेरिकी संविधान के पहले संशोधन में कहा गया है, 'कांग्रेस (अर्थात सीनेट और प्रतिनिधि सभा) किसी धर्म की स्थापना का सम्मान करने, या बेरोकटोक इसके आचरण पर रोक लगाने, या अभिव्यक्ति या प्रेस की स्वतंत्रता को घटाने, या लोगों के शांतिपूर्वक एकत्र होने और शिकायतों को हल करने के लिए सरकार को याचिका देने के अधिकार के खिलाफ कोई कानून नहीं बनाएगी।' इसे देखते हुए, छात्रों का विरोध करने, स्वतंत्र राजनीतिक विचार रखने, जिसमें अमेरिकी राष्ट्रपति और उनके प्रशासन का विरोध करना और अंतरराष्ट्रीय मामलों में रुख अपनाना भी शामिल है, का अधिकार है।

उन्हीं स्वतंत्रताओं पर अब ट्रंप खतरनाक तरीके से हमला कर रहे हैं। किसी व्यक्ति को इसलिए निशाना बनाना कि उसने राष्ट्रपति की आलोचना की तो हो ही रहा है, स्थिति यह है कि फिलिस्तीन समर्थक या इजरायल विरोधी रुख भी व्हाइट हाउस के मौजूदा मुखिया को मंजूर नहीं। यही वजह है कि सोशल मीडिया गतिविधि की व्यापक जांच अमेरिका में विदेशी शिक्षाविदों को आतंकित कर रही है। ट्रंप की सोच के उलट की गई कोई भी पोस्ट किसी विदेशी छात्र को अमेरिका से बेदखल करने या उसके वीजा आवेदन को खारिज करने के लिए काफी है। इस तरह अमेरिका में उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले भारतीय खौफ में जी रहे हैं कि उनका दरवाजा इमिग्रेशन वाले कभी भी खटखटा सकते हैं। भारत के जिन लोगों ने अमेरिका से उच्च शिक्षा पाने के लिए पैसा और समय लगाया, वे सकते में हैं।

बेशक वीजा देना या रद्द करना हर देश का संप्रभु अधिकार है, लेकिन ऐसे फैसले कानून के दायरे में होने के साथ-साथ व्यक्ति के आर्थिक और मानवाधिकारों का सम्मान करने वाले होने की उम्मीद की जाती है। अमेरिका में स्थायी निवास या नौकरी कर रहे भारतीय भी सुरक्षित नहीं हैं। अगर वे ट्रंप की सोच के साथ नहीं हैं, तो अमेरिका में रहने की उनकी अवधि मनमाने ढंग से खत्म हो सकती है। भारतीयों को वर्क वीजा आवंटित करने पर भारत-अमेरिका समझौता - जो अमेरिकी बाजार में भारत की आईटी और अन्य कंपनियों के प्रतिस्पर्धी होने के लिए अहम है- व्यावहारिक रूप से खतरे में आ गया है। फिर से, मोदी या उनके किसी भी मंत्री ने विरोध में कुछ नहीं कहा। बीबीसी ने बताया कि ट्रंप द्वारा प्रस्तावित 'बिग एंड ब्यूटीफुल बिल' में ऐसा भी प्रावधान है जिससे भारत को भेजे जाने वाले पैसे पर ज्यादा शुल्क लगा करेगा।

***

जब प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने 1984 में भारत के पहले अंतरिक्ष यात्री, भारतीय वायुसेना के टेस्ट पायलट राकेश शर्मा से पूछा कि अंतरिक्ष से भारत कैसा दिखता है, जबकि वह सोवियत अंतरिक्ष यान पर पृथ्वी का चक्कर लगा रहे थे, तो उन्होंने उत्तर दिया था- 'सारे जहां से अच्छा'। उसी तरह भारतीय वायुसेना के शुभांशु शुक्ला अब अमेरिकी अंतरिक्ष मिशन एक्सिओम-4 पर अंतरिक्ष यात्री हैं और अगर उनसे अमेरिका के बारे में यही सवाल पूछा जाए, तो शायद उनका जवाब हो- यह तो जल रहा है!

डूबती अमेरिकी अर्थव्यवस्था से लेकर दुनिया के सबसे धनी व्यक्ति एलन मस्क के साथ ट्रंप के झगड़े की बात हो, लॉस एंजिलिस और अन्य अमेरिकी शहर में हो रहे दंगों की बात हो, अमेरिका वास्तव में जल रहा है। 2025 की पहली तिमाही में अमेरिका की अर्थव्यवस्था में 0.3 फीसद की सिकुड़न आई है, अप्रैल में कुल कीमतों में 2.3 फीसद की वृद्धि हुई, डॉलर अन्य मुद्राओं के मुकाबले नरम हुआ और ऐसी स्थिति में राजकोषीय घाटे में वृद्धि की आशंका है।

इसके साथ ही ट्रंप की टैरिफ बाधाओं ने आयात को घटा दिया है, इसलिए उच्च घरेलू उत्पादकता की मांग है, जिसे साकार होने में कम से कम 5-10 साल लगेंगे। उधर, ट्रंप के साथ सोशल मीडिया पर तू-तू मैं-मैं के बाद मस्क ने सुलह का संकेत देते हुए कहा कि उन्हें ट्रंप के बारे में एक्स पर किए गए अपने कुछ हमलों पर खेद है। हाल ही में दोनों का रिश्ता एक-दूसरे को धमकी देने के स्तर तक गिर गया था। मीडिया रिपोर्टों के मुताबिक, मस्क रिपब्लिकन पार्टी के अंदर और बाहर ट्रंप विरोधियों को पैसे देने तक को तैयार हो गए थे ताकि कांग्रेस में ट्रंप के खिलाफ महाभियोग चलाने के लिए पर्याप्त वोट जुटाए जा सकें।

टेस्ला कारों और हाई-स्पीड इंटरनेट सेवा प्रदान करने वाली स्टारलिंक के अरबपति मालिक मस्क अपने इन दोनों व्यवसाय को भारत लाने के इच्छुक हैं। उन्होंने दावा किया था कि न्यूयॉर्क के कुख्यात दिवंगत सेक्स ट्रैफिकर जेफरी एपस्टीन से संबंधित फाइलों में ट्रंप का भी नाम है। मस्क ने आरोप लगाया था- 'यही असली वजह है कि उन्हें (फाइलों को) सार्वजनिक नहीं किया गया है।' इस आरोप ने विपक्षी डेमोक्रेटिक पार्टी को मौका दे दिया कि वे मामले के हर पहलू को सामने लाने की मांग करें। उधर, इससे बिफरे ट्रंप ने जवाबी हमला करते हुए मस्क को आगाह किया कि अगर उन्होंने (मस्क ने) उनके विरोधियों को पैसे दिए, तो उन्हें 'गंभीर नतीजे' भुगतने होंगे। इसलिए, ट्रंप भारत में टेस्ला और स्टारलिंक का स्वागत करने वाले मोदी को कैसे देख रहे होंगे, इसका सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है।

इस बीच, सबसे खतरनाक बात यह रही कि सीएनएन की उस रिपोर्ट ने सुर्खियां बटोरीं जिसमें कहा गया था- 'ट्रंप घरेलू धरती पर अमेरिकी सैनिकों का इस्तेमाल करने के लिए लॉस एंजिलिस मामले को बढ़ा-चढ़ाकर पेश कर रहे हैं।' ट्रंप ने लॉस एंजिलिस में अमेरिकी नेशनल गार्ड्स को तैनात किया। शहर या कैलिफोर्निया राज्य ने इसके लिए नहीं कहा था, जबकि वैधानिक तौर पर राज्य से ऐसा अनुरोध मिलना जरूरी था। ट्रंप ने मध्य और दक्षिण अमेरिकी मूल के स्पैनिश बोलने वाले लोगों द्वारा किए जा रहे दंगों से निपटने के लिए अमेरिकी मरीन को भी स्टैंडबाय पर रखा है। इन समुदायों के खिलाफ आव्रजन और सीमा शुल्क प्रवर्तन एजेंसी अवैध अप्रवासियों को शरण देने के आरोप में छापेमारी कर रही है।

अमेरिकी राष्ट्रपति पद के लिए भावी डेमोक्रेटिक उम्मीदवार माने जाने वाले कैलिफोर्निया के गवर्नर गैविन न्यूजॉम ने कहा है कि अमेरिकी लोकतंत्र के लिए खतरे की वह घड़ी आ गई है जिसकी लंबे समय से आशंका थी। लॉस एंजिलिस में शुरू हुआ दंगा कैलिफोर्निया के अन्य हिस्सों, टेक्सास राज्य के शहरों, न्यूयॉर्क, शिकागो, अटलांटा, फिलाडेल्फिया, वाशिंगटन, बोस्टन और सिएटल तक फैल गया है। प्यू रिसर्च सेंटर के एक सर्वेक्षण में बताया गया है कि केवल पांच देशों में बहुमत ने कहा कि उन्हें ट्रंप पर 'कुछ' या 'बहुत' भरोसा है कि वे सही काम करेंगेः नाइजीरिया (79%), केन्या (74%), इजरायल (69%), हंगरी (53%) और भारत (52%)। ■

राज्य 360° मुंबई महाराष्ट्र

जब 'मर्डर लाइन' में बदल गई मुंबई की जीवन रेखा

सवाल है कि दो लोकल के बीच की दूरी इतनी कम क्यों है जिससे फुटबोर्ड के यात्री आपस में टकरा गए और इतना बड़ा हादसा हो गया?

नवीन कुमार

मुंबईकरों के लिए 9 जून की सुबह मनहूस साबित हुई। मुंब्रा स्टेशन के पास कसारा और छत्रपति शिवाजी महाराज टर्मिनस (सीएसएमटी) की ओर जाने वाली दो लोकल ट्रेनों के अलग-बगल से तेज रफ्तार में गुजरने के दौरान इनके 13 यात्री नीचे गिर गए। इसमें से एक जीआरपी कांस्टेबल सहित चार यात्रियों की मौत हो गई और 9 यात्री घायल हो गए। दुर्घटना की जानकारी सबसे पहले कसारा जाने वाली लोकल ट्रेन के गार्ड ने दी।

रेलवे दुर्घटना की जांच कर रही है। लेकिन इससे पहले मध्य रेलवे के सीपीआरओ स्वप्निल धनराज नीला ने मीडिया को दिए बयान में दुर्घटना का प्रारंभिक कारण लोकल ट्रेनों में अत्यधिक भीड़ के अलावा दो लोकल के यात्रियों के आपस में टकराने से गिरना बताया है। सीपीआरओ के मुताबिक, दुर्घटना की जानकारी सबसे पहले कसारा जाने वाली लोकल ट्रेन के गार्ड ने दी। एक यात्री ने बताया कि जोरदार झटके के बाद यात्री नीचे गिरे हैं। भारी भीड़ की वजह से फुटबोर्ड पर यात्री जान हथेली पर लिए हुए यात्रा कर रहे थे। हालांकि, रेलवे पुलिस के मुताबिक दोनों लोकल के बीच की दूरी कम थी और फुटबोर्ड पर यात्रा करने वाले यात्रियों के कंधे पर लटके बैग से टकराने से यह दुर्घटना हुई।

इस रूट पर पहले भी हादसे होते रहे हैं। यह हादसा अलग इसलिए है कि पहली बार दो लोकल के 13 यात्री आपस में टकराकर एक-एक कर नीचे गिर गए। सवाल है कि वहां दो लोकल के बीच की दूरी इतनी कम क्यों है जिससे फुटबोर्ड के यात्री आपस में टकरा गए? इंडियन एक्सप्रेस ने जीआरपी के एक वरिष्ठ अधिकारी के हवाले से रिपोर्ट में लिखा है कि इस मार्ग पर ऐसी दुर्घटनाएं आम बात हैं। खास तौर पर मुंब्रा स्टेशन के नजदीक मोड़ (घुमावदार पटरी) के आसपास (इसी जगह पर दुर्घटना हुई है)। ट्रेन मोड़ पर चलती है, तो बैठे हुए यात्रियों को भी झटका महसूस होता है। फुटबोर्ड पर खड़े लोगों के लिए यह बहुत खतरनाक हो जाता है। मानसून के मौसम में यह जोखिम और भी बढ़ जाता है। नीला का भी कहना है कि दो लोकल ट्रेनों के बीच की दूरी 1.5-2 मीटर होती है। लेकिन मोड़ पर थोड़ा झुकाव होता है और यह घटना का एक अतिरिक्त कारण हो सकता है।

मुंब्रा प्रवासी संघ के उपाध्यक्ष नज़ीम अंसारी के मुताबिक, मोड़ के कारण ट्रेनों का झुकना इस दुर्घटना का कारण हो सकता है। कई साल पहले इस मुद्दे को उठाने वाले याचिकाकर्ता आनंद मारुति पाटिल का कहना है कि रेलवे ने इस तथ्य को स्वीकार किया है। एक तकनीकी सर्वेक्षण ने पुष्टि की है कि कलवा-मुंब्रा-दिवा खंड एक वक्र पर स्थित है।

लोकल ट्रेनों से गिरकर मरने वालों के प्रति रेलवे प्रशासन और राज्य एवं केन्द्र सरकार की ओर से मुआवाजे की घोषणा और घड़ियाली आंसू के साथ संवेदना जाहिर किया जाता है। लेकिन बीते दो दशकों के दौरान ऐसी कोई पद्धति तैयार नहीं की गई जिससे मरने वालों की संख्या शून्य हो जाए। अंग्रेजों के जमाने के ट्रैक पर लोकल ट्रेनें दौड़ रही हैं। आंकड़े बताते हैं कि लोकल ट्रेन से गिरकर रोजाना सात से आठ दैनिक यात्री मरते हैं।

जीआरपी से एकत्र जानकारी के आधार पर आरटीआई कार्यकर्ता समीर झवेरी ने बताया, बीते तीन वर्षों में मुंबई लोकल में सफर करने वाले 7,560 यात्रियों की जान गई है जबकि 7,293 यात्री गंभीर रूप से घायल हुए हैं। मध्य रेलवे रूट पर सर्वाधिक हादसे ठाणे से कल्याण के बीच हुए हैं। 10 साल पहले एक विशेषज्ञ समिति द्वारा तैयार किए गए अध्ययन-'रिपोर्ट ऑन रिव्यू ऑफ राइजिंग ट्रेंड ऑफ एक्सिडेंटल डेथ्स इन मुंबई सबअर्बन सिस्टम' में बताया गया था कि उपनगरीय ट्रेन प्रणाली अपनी क्षमता का 400 गुना वहन कर रही है। इसने आगाह किया कि अगर कुछ नहीं किया गया तो 2030 तक स्थिति विस्फोट हो सकती है। फिलहाल यह रिपोर्ट धूल चाट रही है।

दुर्घटना मुंब्रा स्टेशन के पास कसारा और छत्रपति शिवाजी महाराज टर्मिनस की ओर जाने वाली दो लोकल ट्रेनों के गुजरने के दौरान गिरे यात्री।

> लोकल ट्रेनों से गिरकर मरने वालों के प्रति रेल प्रशासन और राज्य एवं केन्द्र सरकार की ओर से मुआवाजे की घोषणा और घड़ियाली आंसू के साथ संवेदना जाहिर किया जाता है। लेकिन बीते दो दशकों के दौरान ऐसी कोई पद्धति तैयार नहीं की गई जिससे मरने वालों की संख्या शून्य हो जाए। अंग्रेजों के जमाने के ट्रैक पर लोकल ट्रेनें दौड़ रही हैं

बजट से पटरी से उतर जाती हैं उम्मीदें

जहां मुंबई की जीवनरेखा जानलेवा रेखा में बदल जाती है, मुंबई-अहमदाबाद बुलेट ट्रेन परियोजना 1.08 लाख करोड़ खर्च करती है। व्यस्त समय (सुबह 9-11 बजे और शाम 5-7 बजे) के दौरान ज्यादा ट्रेनों की जरूरत होती है। धारावी पुनर्विकास परियोजना के लिए केन्द्र सरकार ने माटुंगा-माहिम के पास 6.4 एकड़ रेलवे जमीन अडानी समूह को सौंप दी। लोकल ट्रेनों की बात आती है, तो अधिकारी दावा करते हैं कि विस्तार के लिए कोई जमीन नहीं है। उपेक्षित और अनदेखे मुंबईकर क्या करें? वे भीड़भाड़ वाली तेज लोकल ट्रेन में चढ़ जाते हैं और जान की परवाह किए बिना लटके रहते हैं।

9 जून को सरकारी कर्मचारी जीआरपी का कांस्टेबल बाबासाहेब मुखियादल भी ड्यूटी पर ही जा रहे थे, मुंब्रा रेल हादसे का शिकार हो गए। केतन सरोज, राहुल गुप्ता और मयूर शाह की भी मौत हुई है। घायलों में शिव गवली, आदेश भोईर, रेहान शेख, अनिल मोरे, तुषार भगत, मनीष सरोज, मच्छिन्द्र गोतरने, स्नेहा धोंडे और प्रियंका भाटिया हैं।

पिछले साल 23 अप्रैल को इसी मुंब्रा मार्ग पर अवधेश दुबे ने अपने भाई राजेश दुबे को खो दिया था। अवधेश कहते हैं कि रेलवे ने लोकल ट्रेन के बुनियादी ढांचे में कोई परिवर्तन नहीं किया है। 55 साल के समीर झवेरी 1989 में बोरिवली में पटरी पार करते समय अपने दोनों पैर गंवा दिए थे। लेकिन अब वह दूसरे यात्रियों की जान बचने के लिए कानूनी लड़ाई लड रहे हैं। उनके प्रयास से लोकल ट्रेनों को 12 से 15 डिब्बे में परिवर्तित किया गया है। बावजूद इसके लोकल में भीड़ कम नहीं हो रही है। लोकल ट्रेन सेवा में बुनियादी ढांचे में बदलाव की आवश्यकता है। भीड़ में कमी, फ्रीक्वेंसी में वृद्धि और घटनस्थल पर ही घायलों पर तत्काल उपचार पर ध्यान देने से मरने वालों की संख्या कम हो सकती है।

लोकल ट्रेनों की समस्या राजनीति का भी शिकार होती रही है। लोकल की भीड़ को दूसरे राज्यों के लोगों से जोड़ दिया जाता है। मुंब्रा दुर्घटना के बाद भी यह मुद्दा मनसे के अध्यक्ष राज ठाकरे ने उठाया है। ऐसे में लोकल ट्रेन की समस्या राजनीति की भेंट चढ़ जाती है। एक लोकल यात्री दिलीप पवार का कहना है कि सरकार चिनाब रेल ब्रिज बना सकती है तो मुंबई में लोकल ट्रेन सेवा क्यों नहीं सुधार सकती है। उद्धव ठाकरे गुट की शिवसेना नेता प्रियंका चतुर्वेदी ने मुंब्रा हादसे के बाद कहा है कि मुंबई देश का वित्तीय केन्द्र है। लेकिन महाराष्ट्र से जो टैक्स जाता है, उसका सिर्फ तीन पैसा वापस मिलता है। मुंबई के लोगों की बुनियादी मांग और लोकल ट्रेनों की मांग पूरी नहीं हो पा रही है।

लोगों का गुस्सा शांत करने के लिए रेल मंत्री अश्विनी वैष्णव ने जल्दबाजी में घोषणा की कि नवंबर तक स्वचालित दरवाजों वाली अच्छी हवादार लोकल शुरू की जाएगी। पांच महीने में यह चमत्कार कैसे हो सकता है? 2017 में ही पश्चिमी रेलवे बंद दरवाजों वाली लोकल लागू करने में विफल रही थी। कांग्रेस सांसद वर्षा गायकवाड़ ने रेल मंत्री से इस विफलता के लिए माफी मांगने और इस्तीफा देने की मांग की।

मुंबई रेलवे विकास कॉरपोरेशन लिमिटेड के अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक सुभाष चंद्र गुप्ता का कहना है कि मुंब्रा की दुर्घटना को गंभीरता से नहीं लिया जा रहा है। एक यात्री आरिफ अब्बास सैयद का कहना है कि मंत्री का नया प्रस्ताव समय और पैसे की बर्बादी के अलावा कुछ नहीं है। एक महिला यात्री ज्योति चव्हाण कहती हैं कि दो बार गिर चुकी हूं। ऑटोमेटिक दरवाजे की बात मजाक ही लगती है। बाहर तक लटके लोगों के होने से क्या दरवाजा बंद होगा? ■

प्रकाशकः **पवन कुमार बंसल**; संपादकः **राजेश झा**; **पवन कुमार बंसल द्वारा दि एसोसिएटेड जर्नल्स लिमिटेड,** हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली- 11002 की ओर से प्रकाशित एवं मुद्रित। दि एसोसिएटेड जर्नल्स लिमिटेड, हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 और द्वारा आर. सी. मल्होत्रा, दि इंडियन एक्सप्रेस (प्रा.) लिमिटेड प्रेस, ए-8, सेक्टर-7, नोएडा- 201301, उत्तर प्रदेश से मुद्रित।

इन सवालों से बच नहीं सकता चुनाव आयोग

जब सवाल चुनाव आयोग से पूछे जाएं और जवाब भाजपा के नेता दें, तो शक और भी गहरा हो जाता है

योगेंद्र यादव

नेता प्रतिपक्ष राहुल गांधी ने एक बार फिर चुनावी प्रक्रिया की प्रमाणिकता पर सवाल उठाए हैं। लोकतांत्रिक प्रक्रिया से जुड़े अनेक ग़ैर-दलीय संगठनों और व्यक्तियों ने फिर उनके स्वर में अपना स्वर जोड़ा है। भाजपा के नेताओं ने एक बार फिर जवाबी हमला बोला है। गेंद चुनाव आयोग के पाले में है। लेकिन इस मामले को पारदर्शी तरीके के निपटाने की बजाय चुनाव आयोग एक बार फिर खानापूर्ति कर रहा है। यह लोकतंत्र के लिए शुभ नहीं है।

चुनाव की प्रमाणिकता का सवाल नाजुक है और अहम भी। इसलिए इससे जुड़े सभी पक्षों को फूंक-फूंक कर कदम रखना होगा। चुनाव हारने पर चुनावी प्रक्रिया को दोष देना सबसे आसान काम है। इसलिए सिर्फ शक खड़ा करने या एकाध अनियमितता दिखाने से काम नहीं चलेगा। चुनावी धांधली के किसी भी आरोप को साबित करने के लिए पुख्ता प्रमाण पेश करने होंगे। उधर, चुनाव प्रक्रिया को सही बताने के लिए सिर्फ यह दावा कर देना काफी नहीं है। चुनाव निष्पक्ष होने चाहिए, और निष्पक्ष दिखने चाहिए। चुनाव आयोग को पारदर्शिता और निष्पक्षता की हर कसौटी पर खरा उतरना होगा।

राहुल गांधी के नए लेख में कोई नया खुलासा नहीं है। उन्होंने महाराष्ट्र चुनाव को लेकर वही सवाल उठाए हैं जो वह पहले एक प्रेस कांफ्रेंस में उठा चुके हैं। मुख्य सवाल लोकसभा और विधानसभा चुनाव के बीच छह महीने से अंतराल में महाराष्ट्र की वोटर लिस्ट में कुल 40 लाख की वृद्धि (48 लाख से अधिक वोटर जुड़े और 8 लाख वोटरों के नाम कटे) को लेकर है। राहुल गांधी का सवाल है कि अगर पिछले पांच साल में (2019 के विधान सभा से 2024 लोक सभा चुनाव तक) महाराष्ट्र में सिर्फ 32 लाख वोटर बढ़े, तो सिर्फ़ छह महीने में 40 लाख का इजाफा कैसे हो गया? उन्होंने प्रमाण दिया है कि इस तरह का अंतर पहले कभी नहीं हुआ। हैरानी की बात यह है कि इस चुनाव में महाराष्ट्र के वोटरों की संख्या प्रदेश की अनुमानित वयस्क जनसंख्या से भी ज्यादा थी। उन्होंने दूसरा सवाल यह भी उठाया है कि मतदान वाले दिन शाम 5 बजे घोषित 58 प्रतिशत मतदान अप्रत्याशित तरीके से बढ़कर अगले दिन तक 66 प्रतिशत कैसे हो गया? उनका आरोप है कि यह सारा गड़बड़झाला उन 12,000 बूथों पर हुआ जहां भाजपा लोकसभा चुनाव में हारी थी और जिसे पलटकर उसकी जीत सुनिश्चित की जा सकती थी।

बड़ा मुद्दा नेता प्रतिपक्ष राहुल गांधी हर मौके पर महाराष्ट्र चुनाव में धांधली का मुद्दा मजबूती से उठा रहे हैं।

राहुल गांधी द्वारा पेश किए प्रमाण अंतिम और अकाट्य नहीं हैं, लेकिन गंभीर शक पैदा करने के लिए काफी हैं। चुनाव आयोग ने दिसंबर 2024 में कांग्रेस को भेजे एक पत्र में इनमें से कुछ बातों का जवाब दिया भी था। दिक्कत यह है कि इस सारे मामले में चुनाव आयोग ने एक जवाबी हमले की भूमिका अपनाई है। संदेह का निवारण करने की बजाय संदेह करने वालों पर उंगली उठाई है। सवाल का जवाब देने की बजाय कानूनी औपचारिकताओं की आड़ ली है। मसलन वोटर लिस्ट में बढ़ोतरी के मुद्दे पर चुनाव आयोग कहता है कि वोटर लिस्ट में संशोधन की हमारी प्रक्रिया दोषरहित है। हर कदम पर हर पार्टी को ऐतराज करने का अधिकार था, आपने उस वक्त ऐतराज नहीं किया। मान लीजिए कि यह बात सही हो और विपक्षी दलों ने वोटर लिस्ट संशोधन के समय कोताही बरती हो। तब भी क्या चुनाव आयोग की जिम्मेवारी नहीं बनती कि वह खुद वोटर लिस्ट की जांच करे? कागज पर इतनी दोषरहित प्रक्रिया होने के बाद भी छह महीने में कुल 56 लाख बदलाव कैसे हुए, 48 लाख से अधिक नए नाम कैसे जुड़े और 8 लाख वोटरों के नाम कैसे कटे? संभव है कि इन सवालों के वाजिब जवाब हों, लेकिन जब सवाल चुनाव आयोग से पूछे जाएं और जवाब भाजपा के नेता दें, तो शक और भी गहरा हो जाता है।

असली सवाल यह है कि राहुल गांधी या और कोई भी व्यक्ति चुनावी धांधली के पुख्ता प्रमाण पेश करे, तो कैसे करे? चुनाव आयोग पूरी सूचना को सार्वजनिक करने से बचता रहा है। अगर राहुल गांधी के बाकी सवाल सही न भी हों, तब भी उनके इस सवाल से असहमत नहीं हुआ जा सकता कि चुनाव आयोग सूचना सार्वजनिक क्यों नहीं करता। अगर आपको वोटर लिस्ट में हुए बदलाव में गड़बड़ी के प्रमाण देने हैं, तो आपको लोकसभा और विधानसभा चुनाव की बूथवार लिस्ट की सॉफ्ट कॉपी चाहिए, ताकि दोनों लिस्टों की तुलना की जा सके। चुनाव आयोग ने नवीनतम लिस्ट वेबसाइट पर डाली हुई है, लेकिन पुरानी को डिलीट कर दिया है। अगर आपको साबित करना है कि शाम 5 बजे के बाद किसी बूथ पर उतने वोट नहीं पड़े, जितने चुनाव आयोग कह रहा है, तो आपको उस बूथ की वीडियो चाहिए। चुनाव आयोग ने यह देने से इनकार कर दिया। यही नहीं, सरकार ने वह नियम ही बदल दिया जिसके तहत यह सूचना मांगी जा सकती थी। लोकसभा चुनाव के समय से तमाम पार्टियां और संगठन यह मांग कर रहे हैं कि फॉर्म 17C को सार्वजनिक किया जाए जिसमे यह दर्ज होता है कि किस बूथ पर कितने वोट पड़े हैं। लेकिन चुनाव आयोग कोई न कोई बहाना लगाकर इस सूचना को देने से इनकार कर रहा है। नतीजतन, सबको लगता है कि दाल में कुछ काला है।

यही सबसे बड़ा सवाल है। आज से बीस साल पहले अगर चुनाव हारी हुई कोई पार्टी ऐसे सवाल उठाती (जैसे एक बार ममता बनर्जी ने किया था) तो कोई भी उसे गंभीरता से न लेता। उस जमाने में चुनाव आयोग की एक साख थी, उसकी कड़ाई का डंका बजता था। चुनाव के दिनों में सत्ताधारी दल चुनाव आयोग से डरता था। लेकिन पिछले दस वर्ष में चुनाव आयोग ने अपनी वह साख खो दी है। चुनाव आयुक्त एक स्वतंत्र संवैधानिक संस्था की बजाय सरकारी अफसर की तरह काम करते दिखते हैं। चुनाव से जुड़े हर बड़े निर्णय में चुनाव आयोग और भाजपा की जुगलबंदी नजर आती है। सुप्रीम कोर्ट ने एक कोशिश की थी कि चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति निष्पक्ष तरीके से हो। इस सरकार ने उसे भी नाकाम कर दिया और चयन समिति में मुख्य न्यायाधीश की बजाय गृह मंत्री को बैठा दिया। जाहिर है ऐसे में चुनाव आयोग अंपायर कम और खिलाड़ी ज्यादा नजर आता है। बाकी सवालों के साथ राहुल गांधी ने इस चयन प्रक्रिया के बुनियादी खोट पर उंगली उठाई है। भारतीय लोकतंत्र का हर शुभचिंतक इस बात पर उनसे सहमत होगा। ■

दस वर्षों में चुनाव आयोग ने अपनी साख खो दी है। चुनाव आयुक्त एक स्वतंत्र संवैधानिक संस्था की बजाय सरकारी अफसर की तरह काम करते दिखते हैं। चुनाव से जुड़े हर बड़े निर्णय में चुनाव आयोग और भाजपा की जुगलबंदी नजर आती है

'बुलडोजर गणराज्य' में जीना और मरना

जब आधे-अधूरे सबूतों के आधार पर घर गिराए जाएं, बिना सुनवाई के गोलियां चलाई जाएं, तो इंसाफ भला कैसे होगा?

रश्मि सहगल

शशिकांत जाटव और अमरकांत सिंह चौहान ने कभी सोचा भी नहीं होगा कि सच का पीछा करते हुए वे पुलिस लॉक अप में जा पहुंचेंगे और उनके लिए जान के भी लाले पड़ जाएंगे। वे दोनों भिंड, मध्य प्रदेश के युवा पत्रकार हैं। वे एक ऐसी खबर की तह तक पहुंचने में जुटे थे जिससे ज्यादातर लोगों ने काफी पहले ही दूर रहना सीख लिया था - अवैध रेत खनन माफिया और उनकी ढाल बने पुलिस अधिकारी।

जाटव और चौहान जिनकी छानबीन में जुटे थे, उनमें एक थे भिंड के पुलिस अधीक्षक असित यादव। एसपी साहब ने 19 मई 2025 को दोनों पत्रकारों को चाय पर बुलाया। चाय पर कितनी चर्चा हुई पता नहीं, लेकिन पत्रकारों की पुलिस ने जमकर पिटाई जरूर कर दी। दोनों को दिल्ली में शरण लेनी पड़ी, जहां सुरक्षा के लिए पहले उन्हें दिल्ली हाईकोर्ट और फिर सुप्रीम कोर्ट का दरवाजा खटखटाना पड़ा। 28 मई को जब हाईकोर्ट में मामले की सुनवाई चल रही थी, उसी समय भिंड पुलिस की एक टीम ने परिसर के बाहर डेरा डाल रखा था। जाहिर है, यह पत्रकारों को डराने का स्पष्ट प्रयास था। सुप्रीम कोर्ट ने पत्रकारों को गिरफ्तारी से अंतरिम राहत तो दी, लेकिन उन्हें दो हफ्ते के भीतर मध्य प्रदेश हाईकोर्ट जाने को कहा। प्रदेश के सरकारी वकील ने आरोप लगाया था कि ये पत्रकार जबरन वसूली करने वाले गिरोह का हिस्सा थे। वैसे, यह आरोप अपने आप में बेबुनियाद है क्योंकि पुलिस से पैसे ऐंठने की हिम्मत भला कौन कर सकता है! पुलिस और रेत खनन माफिया के बीच गठजोड़ गहरा है और पिछले कुछ सालों के दौरान यह कहीं ज्यादा दुस्साहसी और हिंसक हो गया है।

'साउथ एशिया नेटवर्क ऑन डैम्स, रीवर्स एंड पीपुल' ने 2019-2020 के दौरान रेत माफिया द्वारा मारे गए पांच पत्रकारों, 15 सरकारी अधिकारियों और 35 ग्रामीणों की सूची तैयार की है। इनमें सबसे हाई-प्रोफाइल घटना यूपी के उन्नाव में पत्रकार शुभम मणि त्रिपाठी की गोली मारकर हत्या थी जो 19 जून 2020 को हुई। त्रिपाठी अवैध भूमि सौदों की पड़ताल कर रहे थे और उनके हत्यारे कथित तौर पर शक्तिशाली रियल एस्टेट हितों से जुड़े थे। यह और ऐसी तमाम घटनाएं बताती हैं कि इस देश में किस तरह न्याय पर बुलडोजर चलाया जा रहा है, सच्चाई सिर पर पैर रखकर भाग रही है। अपराधी और पुलिस के बीच की रेखा दिन-ब-दिन धुंधली और पतली होती जा रही है। सितंबर 2023 में यूपी के ही कौशाम्बी में पुलिस ने विजय सोनी को गोली मार दी। 'मुठभेड़' का वीडियो बनाया गया। विजय को लगी गोली असली थी, लेकिन कहानी झूठी। अदालत ने फैसला सुनाया कि यह कोई वैध ऑपरेशन नहीं, बल्कि सोच-समझकर की गई हत्या थी। दो साल हो चुके हैं, लेकिन इसमें लिप्त 12 अधिकारियों के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं हुई। न एफआईआर, न सस्पेंशन। बस खामोशी!

दिल्ली में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश विशाल गोगने ने एक झकझोरने वाली प्रवृत्ति की ओर इशारा किया जिसमें पुलिस संदिग्धों के घुटनों पर गोली चलाती है- आम तौर पर पीड़ितों की आंखों पर पहले ही पट्टी बंधी होती है। गोगने ने ऐसी हरकतों को 'विजिलेंट जस्टिस' करार दिया, जो साफ संकेत है कि कैसे 'कानून के शासन' की जगह 'बल के शासन' ने ले ली है। राज्य समर्थित हिंसा का यह पैटर्न अवैध खनन तक ही सीमित नहीं। पूरे भारत में खासकर यूपी, महाराष्ट्र, तमिलनाडु और मणिपुर जैसे राज्यों में पुलिस बलों ने 'जांचकर्ता' और 'जल्लाद' की दोहरी भूमिका निभाई है, और ऐसे में एनकाउंटर में हत्या और 'फौरी इंसाफ' आम बात हो गई है। लेकिन त्वरित सजा देने का अकेला साधन एनकाउंटर ही नहीं। बुलडोजर एक ताकतवर राजनीतिक प्रतीक के रूप में उभरा है। 2022 से 2023 के बीच 1.5 लाख से ज्यादा घरों को ध्वस्त किया गया जिससे सात लाख से ज्यादा बेघर हो गए हैं।

लखनऊ के बीचों-बीच 70 साल की शबाना बेगम के चार कमरे वाले घर में तीन पीढ़ियां रहती थीं। 19 जून 2024 को अकबरनगर में उनके जैसे 1,100 से ज्यादा घरों को रातों-रात ध्वस्त कर दिया गया। यह एक इकोटूरिज्म हब के लिए 'जमीन खाली कराने' के सरकारी अभियान का हिस्सा था। अहमदाबाद के सियासत नगर में 50 बुलडोजरों का इस्तेमाल करके 3,000 पुलिसकर्मियों ने रातों-रात 8,000 घरों को ध्वस्त कर दिया। जो घर खो रहे हैं, उनमें ज्यादातर मुस्लिम, दलित और आदिवासी हैं। सुप्रीम कोर्ट ने संदिग्ध अपराधियों की संपत्तियां गिराने के लिए राज्यों को कड़ी फटकार लगाई है और कहा है कि अधिकारियों को पहले से सूचना देनी चाहिए और कानून की उचित प्रक्रिया का पालन किए बिना संदिग्धों के खिलाफ मनमानी कार्रवाई नहीं करनी चाहिए। कोर्ट ने कहा, 'औरतों, बच्चों और बुजुर्गों को रात में सड़कों पर घसीटे जाते देखना कोई सुखद दृश्य नहीं। अगर अधिकारी कुछ समय के लिए हाथ रोक लें, तो कोई आफत नहीं आ जाएगी'। फिर भी, बुलडोजर चलते रहते हैं।

फोटो: गेटी इमेजेज

मनमानी कार्रवाई कब कहां बुलडोजर चल जाए, नहीं पता। इस तरह जमींदोज किया गया एक प्रदर्शनकारी का घर।

पहलगाम में आतंकी हमले के बाद अधिकारियों ने संदिग्ध आतंकवादियों और उनके परिवार के घरों को ध्वस्त करने के लिए विस्फोटकों का इस्तेमाल किया। ज्यादातर मामलों में ये पैतृक घर थे जिसमें लोग संयुक्त रूप से रह रहे थे, लेकिन घरों को गिराने से तमाम लोग बेघर हो गए। ऐसी तोड़फोड़ बहुत कम सबूतों के आधार पर की जाती है।

मध्य प्रदेश के आदिवासी बहुल मंडला में पुलिस ने जून 2024 में गोमांस के अवैध व्यापार के बारे में 'सूचना मिलने' के बाद 11 घरों को ध्वस्त कर दिया। यह ऐसा प्रदेश है जहां भीड़ का शासन अक्सर कानूनी प्रक्रियाओं को मात दे देता है। राज्य सरकार गौरक्षकों की भीड़ पर नकेल कसने में विफल रही है और ये गायों की रक्षा की आड़ में मुस्लिमों पर हमला करना और उनकी हत्या करना जारी रखते हैं। 24 मई 2025 को उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ में एक मिनी ट्रक में मांस ले जा रहे चार लोगों को भीड़ ने पीट-पीटकर मार डाला और गाड़ी को जला डाला। भीड़ को शक था कि उसमें गोमांस ले जाया जा रहा था। लेकिन चार दिन बाद फोरेंसिक जांच से पता चला कि वह गोमांस नहीं था। अब तक राज्य गौरक्षकों को दोषी ठहराने में आम तौर पर विफल ही रहा है।

'भारत में पुलिसिंग की रिपोर्ट (एसपीआईआर) 2025' 17 राज्यों के सर्वेक्षण पर आधारित है और इसमें शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के 8,276 पुलिस कर्मियों से बातचीत की गई है। यह रिपोर्ट हमारी सबसे बुरी आशंकाओं को सच साबित करती है। कॉमन कॉज और सेंटर फॉर द स्टडी ऑफ डेवलपिंग सोसाइटीज के लोकनीति कार्यक्रम द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट में पाया गया कि जाति, धर्म और राजनीतिक संबद्धता पुलिस की कार्रवाइयों को व्यापक रूप से प्रभावित करती है। एक चौथाई से अधिक (27 फीसद) अधिकारियों ने यौन उत्पीड़न या अपहरण के मामलों में भीड़ की हिंसा को वाजिब ठहराया; 59 फीसद ने गिरफ्तारी प्रोटोकॉल का पालन नहीं करने की बात मानी; दिल्ली पुलिस बल के 62 फीसद लोगों का मानना था कि मुसलमान अपराध की ओर 'स्वाभाविक रूप से प्रवृत्त' होते हैं; गुजरात पुलिस ने दलितों और आदिवासियों के खिलाफ सबसे ज्यादा पक्षपात दिखाया। पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स 2020 में, राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो ने 76 हिरासत में मौतें दर्ज कीं, जबकि राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने 90 दर्ज कीं। लेकिन उनमें से केवल 35 फीसद मामलों में न्यायिक जांच के आदेश दिए गए।

लेकिन पुलिस द्वारा पत्रकारों को पीटने और धमकाने से जरा भी गुरेज न करना अपेक्षाकृत नया है। 'रिपोर्टर्स विदाउट बॉर्डर्स' ने पत्रकारों को धमकाने वालों पर कार्रवाई न करने के लिए भारत सरकार पर सवाल उठाए हैं। भारत का लोकतंत्र सभी के लिए न्याय, स्वतंत्रता और सम्मान के वादे पर बना था। वह वादा तोड़ा जा चुका है। तो इसकी जवाबदेही किसकी है? शीर्ष नेतृत्व में आक्रोश कहां है? प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की चुप्पी स्पष्ट है। आलोचकों का तर्क है कि भारत एक भीड़तंत्र की ओर बढ़ रहा है, जहां बुलडोजर और गोलियों ने अदालतों और संवैधानिक संरक्षण की जगह ले ली है। ■

तमाम घटनाएं बताती हैं कि इस देश में किस तरह न्याय पर बुलडोजर चलाया जा रहा है, सच्चाई सिर पर पैर रखकर भाग रही है। अपराधी और पुलिस के बीच की रेखा दिन-ब-दिन धुंधली और पतली होती जा रही है

संडे नवजीवन
रविवार, 15 जून, 2025 I www.navjivanindia.com

मिश्रित भावनाओं वाली ट्रेन सेवा

हालांकि घाटी इस क्षेत्र को देश के बाकी हिस्सों से जोड़ने वाली पहली रेल लाइन का स्वागत कर रही है, लेकिन चिंताएं बनी हुई हैं

उपलब्धि नदी तल से 359 मीटर की ऊंचाई पर बना 1,315 मीटर लंबा दुनिया का सबसे ऊंचा रेलवे चिनाब ब्रिज।

हारून रेशी

ऊंचे पहाड़ों से घिरी कश्मीर घाटी सदियों तक अलग-थलग रही। पहाड़ों को चीरते हुए जो भी खतरनाक रास्ते बनाए गए, सर्दियों के दौरान वे अक्सर भारी बर्फबारी से कट जाते थे और उनके भरोसे रहना अनिश्चितताओं को न्योता देने जैसा था। 1892 में डोगरा शासक महाराजा प्रताप सिंह ने घाटी को रेल लिंक के जरिये भारत के बाकी हिस्सों से जोड़ने का विचार किया था।

इसके 133 साल बाद जब प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने दुनिया के सबसे ऊंचे रेलवे आर्च ब्रिज (चिनाब नदी तल से 359 मीटर ऊपर) का उद्घाटन किया, तो महाराजा के पोते डॉ. करण सिंह - जो एक वरिष्ठ कांग्रेस नेता हैं और जिन्होंने पूर्व जम्मू-कश्मीर राज्य के सदर-ए-रियासत के रूप में भी काम किया था - ने इसे 'सही मायने में एक ऐतिहासिक क्षण' कहा। औपचारिक बयान जारी करते हुए उन्होंने कहाः '1 मार्च, 1892 को महाराजा प्रताप सिंह ने जम्मू-कश्मीर को जोड़ने के लिए रेलवे परियोजना की आधारशिला भी रखी थी। हालाकि, तब इतनी बड़ी परियोजना के लिए न तो जरूरी तकनीक थी और न ही पैसे।'

सदियों से कश्मीर को बाहरी दुनिया से जोड़ने वाली सड़कें थीं बारामुला-पखली मार्ग (जिसे आमतौर पर रावलपिंडी रोड के नाम से जाना जाता है), श्रीनगर को पुंछ और राजौरी से जोड़ने वाला ऐतिहासिक मुगल रोड, श्रीनगर-लेह रोड और श्रीनगर-जम्मू रोड- जिसे तब कार्ट रोड के नाम से जाना जाता था और अब इसे एनएच-44 कहा जाता है। ये सभी रास्ते, यहां तक कि एनएच-44 भी जो जम्मू और कश्मीर के बीच सबसे ज्यादा इस्तेमाल किया जाने वाला राजमार्ग है, बड़ी संख्या में यात्रियों के लिए मौत का फंदा साबित हुआ है।

वरिष्ठ स्तंभकार, लेखक और संपादक अरजीमंद हुसैन तालिब ने फेसबुक पोस्ट में लिखाः 'दशकों से कश्मीर के 80 लाख लोगों ने श्रीनगर-जम्मू राजमार्ग की वजह से बेहिसाब तकलीफ और नुकसान झेले हैं। ( ) नेताओं को उन हजारों यात्रियों, सड़क कर्मियों, ड्राइवरों की याद में मौन रहना चाहिए था, जो बिना किसी गलती के इस सड़क पर मारे गए या विकलांग हो गए। आइए, आज हम उन लोगों और उनके अधूरे सपनों को याद करें।'

'संडे नवजीवन' से बात करते हुए तालिब, जो एक अंतरराष्ट्रीय विकास पेशेवर भी हैं, ने कहा कि पिछले कुछ समय के दौरान 'यह सफर खासा महंगा हो गया था और जम्मू-कश्मीर के तमाम लोगों के लिए तो यह जेब से बाहर की बात हो गई थी। भरोसेमंद ट्रेन सेवा से आवागमन में काफी हद तक सुधार होगा। हालांकि, यह बेहद जरूरी है कि श्रीनगर और दिल्ली और जम्मू के बीच सीधी ट्रेनें हों। मौजूदा श्रीनगर-कटरा लिंक की अपनी सीमाएं हैं।' उन्होंने कहा, 'सबसे जरूरी बात यह है कि भविष्य में सरकार को कार्गो सेवा भी शुरू करनी चाहिए। जब दिल्ली और श्रीनगर के बीच माल ढुलाई आसान हो जाएगी, तब कश्मीर का न केवल आर्थिक विकास बेहतर होगा बल्कि रोजगार के मौके भी ज्यादा बनेंगे। ट्रेन कार्गो सेवा जम्मू-कश्मीर और देश के बाकी हिस्सों के बीच माल ढुलाई की लागत को भी कम करेगी।'

***

रेल संपर्क माल ढोने का तेज, सस्ता और अधिक अच्छा साधन है, जिससे फल जैसी जल्दी खराब होने वाली वस्तुओं के लिए भी बाजार मिल सकता है। ऐसे ही, पूरे देश से उत्पाद और कच्चा माल मौसम की स्थिति की परवाह किए बिना अधिक तेजी से घाटी पहुंचाया जा सकता है। दक्षिण कश्मीर के शोपियां के बागवान और फल व्यापारी मोहम्मद अब्बास कहते हैं, 'यह पहली बार होगा जब हम देश भर के बाजारों में सेब और अन्य फल कम लागत पर भेज पाएंगे, और वह भी कम समय में। पहले, हमारे फलों से लदे ट्रक मौसम खराब होने के कारण कई-कई दिनों तक राजमार्ग पर फंसे रहते थे।'

> जम्मू चैंबर ऑफ कॉमर्स के पूर्व अध्यक्ष वाई. वी. शर्मा कहते हैं- जम्मू पहले कश्मीर के लिए ट्रांजिट हब की तरह काम करता था। अब घाटी तक सीधी पहुंच हो जाने से जम्मू का कारोबार खत्म हो जाएगा। इसका असर पर्यटन पर भी पड़ेगा

घाटी में जहां नई उम्मीद जगी है, वहीं जम्मू के व्यापारियों को डर है कि रेल संपर्क से उनके कारोबार को नुकसान हो सकता है। जम्मू चैंबर ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्रीज के पूर्व अध्यक्ष और प्रमुख व्यवसायी वाई.वी. शर्मा कहते हैं- 'पहले देश भर का माल सबसे पहले जम्मू आता था जो कश्मीर के लिए ट्रांजिट हब की तरह काम करता था। अब घाटी तक सीधी पहुंच हो जाने से जम्मू का कारोबार खत्म हो जाएगा। इसका असर पर्यटन पर भी पड़ेगा, क्योंकि यात्री अब बिना जम्मू आए आगे जा सकते हैं।'

शर्मा ने 'संडे नवजीवन' से बातचीत में कहा, 'मुझे लगता है कि जम्मू को आय के वैकल्पिक स्रोतों पर विचार करने की जरूरत है, जैसे बेहतर बुनियादी ढांचे में निवेश करके टिकाऊ व्यापार मॉडल विकसित करना। हम जम्मू के विभिन्न हिस्सों में धार्मिक पर्यटन को भी बढ़ावा दे सकते हैं। इसके अलावा यहां कई दर्शनीय स्थल हैं, जिन्हें सही तरीके से विकसित कर दिया गया तो पूरे देश के पर्यटकों को लुभा सकते हैं।' जम्मू 1948 से ही घाटी के प्रवेश द्वार के तौर पर काम करता रहा है। अपनी रणनीतिक भौगोलिक स्थिति और डोगरा युग से ही जम्मू-कश्मीर की शीतकालीन राजधानी के रूप में काम करने की वजह से जम्मू की अपनी खास अहमियत रही है। जम्मू 1897 में अंग्रेजों द्वारा बनाए गए रेल लिंक के जरिये सियालकोट से जुड़ा था जो विभाजन के बाद बंद हो गया। 1971 में पठानकोट-जम्मू तवी रेल लाइन की स्थापना की गई, जिसने शहर को देश के बाकी हिस्सों से जोड़ा।

जाने-माने अर्थशास्त्री एजाज अयूब बताते हैं- 'हमेशा से ऐसा ही हुआ है। कनेक्टिविटी में सुधार ने लगातार आर्थिक गतिशीलता को प्रभावित किया है और परिस्थितियों के मुताबिक किसी इलाके पर इसका सकारात्मक तो कभी नकारात्मक असर पड़ा है। सभ्यताएं अक्सर नदियों के किनारे विकसित हुईं क्योंकि नदियों का इस्तेमाल नौवहन और परिवहन के लिए किया जाता था। यही वजह है कि श्रीनगर का पुराना शहर झेलम नदी के किनारों पर विकसित हुआ। अब ऐसा ही विकास सड़क और रेलवे कनेक्टिविटी के कारण होता है। उदाहरण के लिए जम्मू का कटरा माता वैष्णो देवी की यात्रा करने वाले तीर्थयात्रियों के लिए मुख्य आधार शिविर है। अब जब रेल लिंक सीधे कटरा तक पहुंच गया है तो तीर्थयात्रियों से संबंधित ज्यादातर व्यवसाय जम्मू से दूर हो गए हैं।' अयूब के मुताबिक, कुछ साल पहले भी जम्मू को झटका लगा था जब केन्द्र शासित प्रदेश बनने के बाद गर्मियों में सरकारी कार्यालयों को जम्मू शिफ्ट करने का सिलसिला बंद कर दिया गया। जम्मू की अर्थव्यवस्था में विविधता लाए जाने पर जोर देते हुए वह कहते हैं- 'जब दरबार जम्मू स्थानांतरित होता था, तो शहर में गतिविधि और व्यवसाय में उछाल आ जाता था, क्योंकि हजारों कश्मीरी परिवार अस्थायी रूप से स्थानांतरित हो जाते थे।' वह कहते हैं- 'जम्मू का रणबीर सिंह पुरा प्रीमियम क्वालिटी के बासमती चावल की खेती के लिए मशहूर है। यह चावल अपनी खुशबू, स्वाद और बेहतरीन क्वालिटी की वजह से अंतरराष्ट्रीय बाजारों में काफी लोकप्रिय है। जम्मू को अब अपना ध्यान अपनी पारंपरिक आर्थिक रीढ़ यानी खेती-बाड़ी पर केन्द्रित करना चाहिए, जो आय का एक ज्यादा स्थिर और भरोसेमंद स्रोत है।'

***

कश्मीर घाटी के लिए नए रेल संपर्क से व्यापार और पर्यटन दोनों को बढ़ावा मिलने की उम्मीद है। हालांकि पर्यटकों की बढ़ती आवाजाही से पर्यावरण को होने वाले नुकसान और स्थानीय संस्कृति और परंपराओं पर नकारात्मक प्रभाव को लेकर चिंता बढ़ जाती है। जाने-माने सोशल और पर्यावरण ऐक्टिविस्ट राजा मुजफ्फर भट कहते हैं- 'जरूरी नहीं कि पर्यटन के लिए द्वार खोलना खुश होने की ही बात हो। पर्यटकों का स्वागत करने के साथ-साथ सरकार को संवेदनशील स्थानों की सुरक्षा के लिए एक व्यापक योजना विकसित करनी चाहिए। स्थानीय लापरवाही की वजह से हम पहले से ही ग्लेशियरों, जंगलों, जल स्रोतों को हो रहे नुकसान को महसूस कर रहे हैं। यह सुनिश्चित करने की एक ठोस प्रक्रिया होनी चाहिए कि पर्यटन को बढ़ावा पर्यावरण की कीमत पर न हो।'

वरिष्ठ नागरिक, कवि और लेखक जरीफ अहमद जरीफ कहते हैं- 'पुराने दिनों में कश्मीर को 'पीर वार' (संतों की भूमि) के रूप में जाना जाता था। यह ऐसा दौर था जब मुसलमान और हिन्दू समान रूप से अपने-अपने पूजा स्थलों-मस्जिदों और मंदिरों में इबादत और पूजा-अर्चना के लिए जाते थे। वह दौर वाकई घाटी के लिए स्वर्णिम युग था। अफसोस है कि वह सौहार्दपूर्ण समय धुंधला गया है। आज जब बाहरी प्रभाव बढ़ता जा रहा है- चाहे सकारात्मक हो या नकारात्मक- हमें सावधान रहना चाहिए।' ■

तबाही की तरफ सरकती जाती दुनिया

पहले प्रलय की घड़ी 90 सेकंड दूर थी, अब यह 89 सेकंड ही दूर रह गई है - यह तबाही के अब तक के सबसे करीब है

फोटो: गेटी इमेजेज

नतीजा कयामत का समय बताने वाली प्रलय की घड़ी बता रही है कि हम मध्य रात्रि यानी नष्ट होने के 89 सेकंड ही दूर रह गए हैं।

आकार पटेल

डूम्स डे क्लॉक यानी कयामत का समय बताने वाली प्रलय घड़ी एक ऐसा उपकरण है जिसे लोगों को चेतावनी देने के लिए डिजाइन किया गया है कि मानव जाति खतरनाक तकनीकों के साथ हमारी दुनिया को खत्म कर देने के कितने करीब हैं। इस घड़ी पर समय विशेषज्ञों द्वारा निर्धारित किया गया है ताकि यह दर्शाया जा सके कि हम विनाश (आधी रात) से कितनी दूर हैं, और अगर इसे सही और सटीक मानें, तो हम दुनिया के अंत के इतना करीब पहुंच चुके हैं जितना पहले कभी नहीं थे।

यह घड़ी 1947 में बनाई गई थी, जो भारत की स्वतंत्रता का वर्ष था, जब वैश्विक स्तर पर परमाणु हथियारों का खतरा सर्वाधिक था। उससे दो साल पहले ही नागासाकी और हिरोशिमा पर परमाणु बम गिराए गए थे, और सोवियत संघ अपने परमाणु हथियार विकसित कर रहा था। उसने 1949 में ही यह क्षमता हासिल कर ली, फिर यूनाइटेड किंगडम ने 1952 में, फ्रांस ने 1960 में और चीन ने 1964 में परमाणु हथियार बना लिए।

भारत ने भी 1974 में खुद को परमाणु हथारों से लैस कर लिया था और फिर 1990 के दशक में पाकिस्तान ने भी अपनी परमाणु क्षमता का प्रदर्शन किया। माना जाता है कि इजरायल और उत्तर कोरिया के पास भी परमाणु हथियार हैं और वह वक्त दूर नहीं जब ईरान भी इन्हें हासिल कर ले।

1980 के दशक में, जब मैं अमेरिका में छात्र था, तो इस सबसे जुड़ा हुआ सबसे अहम तत्व रणनीतिक रक्षा पहल नामक कुछ था, जिसे स्टार वार्स कहा जाता था। इसके तहत रोनाल्ड रीगन प्रशासन एक ऐसी प्रणाली विकसित कर रहा था जो अमेरिका को अपनी आक्रामक क्षमता को बनाए रखते हुए आने वाली मिसाइलों को मार गिराने में सक्षम कर देगा। शायद इस कारण ही कयामत की घड़ी में समय को आगे बढ़ाया गया।

सोवियत संघ के विखंडन के बाद, 1991 में प्रलय की इस घड़ी को आधी रात से 17 मिनट पीछे कर दिया गया, जो तब तक का सबसे दूर का समय था। परमाणु हथियारों का खतरा काफी हद तक कम हो गया था। कम-से-कम खबरों में तो यही सुना-पढ़ा जा रहा था। 1991 से पहले परमाणु हथियारों पर आज की तुलना में कहीं ज़्यादा रिपोर्ट आती थीं, विश्लेषण होते थे, सिविल सोसायटी ग्रुप (जैसे पगवाश) ज्यादा सक्रिय थे।

इसकी वेबसाइट के अनुसार, वर्तमान में घड़ी में समय सेट करने वाले 18 व्यक्ति हैं। इनमें तीन दक्षिण एशियाई मूल के हैं (जिनमें से एक आईआईटी, दिल्ली में प्रोफेसर हैं)।

दो दशक पहले, प्रलय की घड़ी में जलवायु परिवर्तन समेत अन्य खतरे शामिल किए जाने लगे थे और अब इसमें कृत्रिम बुद्धिमत्ता यानी आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस जैसे नए खतरों को भी शामिल करना होगा। ध्यान रहे कि मानव जाति खुद को नष्ट करने के लिए सभी तरह के नए तरीकों का तेजी से आविष्कार कर रही है।

इस साल की शुरुआत में 28 जनवरी को ये लोग इस नतीजे पर पहुंचे कि 1947 के मुकाबले 2025 में हम नष्ट होने के कहीं ज्यादा नजदीक पहुंच चुके हैं। इसमें कहा गयाः "अब हम मध्य रात्रि यानी नष्ट होने के 89 सेकेंड और नजदीक पहुंच गए हैं। 2024 में, मानवता तबाही के और भी करीब पहुंच गई है। विज्ञान और सुरक्षा बोर्ड को गहराई से चिंतित करने वाले रुझान जारी रहे, और खतरे के स्पष्ट संकेतों के बावजूद, राष्ट्रीय नेता और उनके समाज दिशा बदलने के लिए ज़रूरी कदम उठाने में नाकाम रहे।

> दो दशक पहले, प्रलय की घड़ी में जलवायु परिवर्तन समेत अन्य खतरे शामिल किए जाने लगे थे। अब कृत्रिम बुद्धिमत्ता यानी आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस जैसे नए खतरों को भी शामिल करना होगा। ध्यान रहे कि मानव जाति खुद को नष्ट करने के लिए सभी तरह के नए तरीकों का तेजी से आविष्कार कर रही है

नतीजतन, पहले जहां हम प्रलय यानी संकेत रूप से रात 12 बजे से 90 सेकंड दूर थे, अब 89 सेकंड ही दूर रह गए हैं - यह तबाही के अब तक के सबसे करीब है। हमारी हार्दिक आशा है कि नेता दुनिया की बरबादी करने वाले हालात को पहचानेंगे और परमाणु हथियारों, जलवायु परिवर्तन, जैविक विज्ञान और विभिन्न उभरती प्रौद्योगिकियों के संभावित दुरुपयोग से पैदा होने वाले खतरों को कम करने के लिए साहसिक कदम उठाएंगे।"

जनवरी में ऐसा किया जाने के बाद से अब तक बहुत कुछ हो चुका है। रूसी हवाई अड्डों पर ड्रोन हमले ने, उसकी सबसे महत्वपूर्ण हवाई सामग्री और उपकरणों को नष्ट कर दिया जिससे यूक्रेन युद्ध में और तेजी आ गई। गाजा में इजरायली नरसंहार जारी है और अब इजरायली सरकार फिलिस्तीनियों को भूखा मार रही है, लेबनान जैसे नजदीकी देशों और यमन जैसे दूर के देशों के खिलाफ खुले संघर्ष कर रही है। अमेरिका की अगुवाई एक विशेष रूप से अटपटा नेता कर रहा है। व्यापार से लेकर ताइवान तक के मामलों में चीन के खिलाफ अमेरिका ने जो तनाव पैदा किया है, वह और भी बढ़ गया है। और हां, कुछ ही हफ्ते पहले भारत ने एक ऐसे संघर्ष में हिस्सा लिया था जिसके बारे में अमेरिकी राष्ट्रपति बार-बार दावा करते हैं कि उससे परमाणु युद्ध होने का खतरा था।

ऊपर दिए गए सारे मामलों के साथ ही हमें जलवायु परिवर्तन और कृत्रिम बुद्धिमत्ता-एआई के प्रभाव से होने वाले खतरों को भी जोड़ना चाहिए। इनमें से दूसरे क्षेत्र में चीजें इतनी तेजी से आगे बढ़ रही हैं कि इस बात की कोई वास्तविक समझ नहीं है कि खतरा कितना निकट है, या यहां तक कि खतरे की प्रकृति कैसी होगी। तकनीक के सबसे करीब रहने वाले लोग सबसे अधिक भयभीत (इस मामले में शिक्षाविद) और सबसे अधिक खारिज करने वाले (यदि वे एआई के विकास से लाभ कमाने वाली कंपनियां हैं) हैं, और इसलिए बाहरी लोगों के लिए इसका अनुमान लगाना आसान नहीं है।

यह देखते हुए कि यह अब अमेरिका और चीन के कॉरपोरेट क्षेत्रों के बीच एक दौड़ है, न कि सरकारों द्वारा नियंत्रित परमाणु हथियारों की दौड़, इसे नियंत्रित करना किसी भी मामले में संभव नहीं है। जब यह रेस और तेज होकर बढ़ जाएगी, तो जल्द ही हमें पता चल जाएगा कि आखिरी नतीजा तबाही होगी या अप्रत्याशित लाभ। सोशल मीडिया पर गलत सूचनाएं फैलाने और ड्रोन जैसे सैन्य प्रयोगों में एआई की भूमिका हमें पहले से ही संकेत दे रही है कि नतीजे अच्छे से कहीं ज्यादा बुरे हो सकते हैं।

ध्यान रहे कि हमने एक और महामारी की संभावना पर चर्चा तक नहीं की है। उस अराजकता और अशांति के बारे में भी नहीं सोचा है जो मुट्ठी भर खरबपतियों और अरबों गरीबों वाली दुनिया में जल्द ही आ जाएगी।

प्रलय की घड़ी हमें चेता रही है और हमारे अस्तित्व पर मंडराते खतरे और जोखिम को कम करने की कोशिशें शुरू करने को प्रोत्साहित करने का प्रयास करती है। लेकिन मेरी राय में यह इसमें काफी हद तक नाकाम ही साबित हुई है। अगर हम इस बात पर विचार करें कि भारत सहित दुनिया भर में रात में किस तरह की खबरें सुनी जाती हैं, तो हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि मानव जाति अन्य घटनाओं से अधिक परेशान है। कुछ लोगों के लिए ये घटनाएं उन बहुत गंभीर चीज़ों की तुलना में मामूली हो सकती हैं जिनमें हम अपनी पृथ्वी को धकेल रहे हैं। लेकिन हमें यह भी स्वीकार करना चाहिए कि वे अधिकांश मानव जाति के मनोरंजन के लिए इतने महत्वपूर्ण हैं कि खतरे की घड़ी की टिक-टिक सुनाई नहीं दे रही है। ■

कैंपस के बाहर हो या भीतर, आलोचना राजनीति का हिस्सा

पिछले साल नवंबर में दिल्ली छात्र संघ (डुसू) का अध्यक्ष चुने जाने के बाद **रौनक खत्री** शायद ही कभी खबरों में नहीं रहे। जब वह कॉलेज के प्रिंसिपल के दफ्तर की दीवार पर गोबर नहीं लगा रहे होते हैं, तब भी उन्हें शिक्षकों और गैर-शिक्षण कर्मचारियों से बहस करते देखा जा सकता है। कई हजार छात्रों की जरूरतों को पूरा करने के लिए कुछ ही क्लर्क क्यों? हजारों छात्रों वाले कॉलेज के कार्यालय में एक ही कंप्यूटर क्यों? कैंपस में उन्हें 'मटकामैन' के नाम से जाना जाता है, क्योंकि उन्होंने मटकों के साथ विरोध प्रदर्शनों का नेतृत्व किया। पिछले महीने डुसू कार्यालय में छात्रों के एक छोटे समूह के साथ उन्होंने राहुल गांधी से बातचीत की थी। परीक्षा में व्यस्त होने के बावजूद उन्होंने **विश्वदीपक** से बातचीत के लिए कुछ पल निकाले। अंश:

आप पिछले सात-आठ वर्षों में एनएसयूआई से डीयूएसयू के पहले अध्यक्ष हैं। एजेंडा क्या रहा है?

छात्रसंघ अध्यक्ष चुने जाने के बाद मैंने सबसे पहले छात्रों की मुख्य समस्याओं को समझने के लिए सर्वेक्षण करवाया। इससे पता चला कि सबसे बड़ा मुद्दा पेयजल की कमी का है। हमने इसे चुनाव अभियान के दौरान उठाया था। सर्वेक्षण ने हमें इसे प्रशासन तक ले जाने का आत्मविश्वास दिया। हमने आंकड़े एकत्र किए, रिपोर्ट तैयार की और इसे विश्वविद्यालय को सौंपा। प्रतिक्रिया उत्साहजनक रही। विश्वविद्यालय प्रशासन ने सभी कॉलेजों के प्रिंसिपलों को इस बाबत निर्देश जारी किया। तब से, सभी 90 कॉलेजों में वाटर कूलर लगाए गए हैं। प्रत्येक को 3-4 कूलर की आवश्यकता थी, और हमें बताया गया कि लगभग 350 कूलर स्थापित हो चुके हैं या प्रक्रिया में हैं।

आप छात्रों के लिए और क्या कर पाए हैं?

पीने के पानी की समस्या के समाधान के बाद, हमने सीसीटीवी कैमरों पर ध्यान केन्द्रित किया। जब पूरा शहर सीसीटीवी कैमरों से भरा हुआ है, तो कैंपस में उन्हें न लगाना कोई मतलब नहीं रखता। खासकर झगड़े, बाहरी लोगों द्वारा परेशानी पैदा करने और छात्राओं एवं संकाय सदस्यों को परेशान किए जाने के मामलों को देखते हुए यह जरूरी था। तीन महीने के भीतर टेंडर जारी किया गया, और हमें बताया गया कि पहले चरण में 700 सीसीटीवी कैमरे लगाए जा रहे हैं। हमने छात्रों को मेट्रो स्टेशनों से उनके कॉलेजों तक बिना शुल्क यात्रा के लिए विशेष बस सेवा की भी मांग की। अब तक दो ऐसी बसों को मंजूरी दी गई है - एक उत्तरी परिसर और दूसरी दक्षिणी परिसर के लिए।

इसके साथ ही, हम छात्रों के लिए मेट्रो किराये में छूट के लिए भी प्रयास कर रहे हैं। इसके बारे में वर्षों से बात की जा रही है। हमने अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद और दिल्ली की मुख्यमंत्री को इसके लिए समर्थन की याद दिलाई। वर्तमान मुख्यमंत्री 1995-96 में डीयूएसयू की सचिव थीं और एबीवीपी इस मुद्दे को उठा रहा था। अब जबकि दिल्ली और केन्द्र दोनों जगह भाजपा की डबल इंजन वाली सरकार है, तो ईमानदारी से कहूं तो इस वादे को पूरा करना पहले से कहीं अधिक आसान है।

डीयू में पीएचडी घोटाले को लेकर मीडिया में आई रिपोर्ट के मुद्दे को आपने उठाया था। वह क्या था?

यह पीएचडी स्कॉलर्स द्वारा उठाया गया था जिसमें भेदभाव की शिकायतें थीं। यूजीसी नियमों के विपरीत दिल्ली विश्वविद्यालय ने पीएचडी साक्षात्कार का महत्व बढ़ा दिया था जो लिखित परीक्षा से भी कहीं ज्यादा था। आरोप है कि यह बदलाव मनमाने तरीके से उम्मीदवारों के चयन के लिए किया गया था जिसमें योग्य लोगों की तुलना में 'जुगाड़' वालों को तरजीह दी गई थी। यह अनुचित था जिससे छात्रों में असंतोष था। इस मुद्दे को मैंने लोकसभा में नेता प्रतिपक्ष राहुल गांधी के समक्ष उठाया था।

क्या नेता प्रतिपक्ष के साथ हुई बैठक के बारे में कुछ और बता सकते हैं? क्या सिर्फ एससी/एसटी/ओबीसी छात्रों को ही उनसे मिलने के लिए आमंत्रित किया गया था?

नहीं। सामान्य वर्ग के छात्रों को भी आमंत्रित किया गया था। करीब 25 छात्रों ने उनसे मुलाकात की। डीयू के छात्रों की हर समस्या को उठाया गया। राहुल गांधी जी ने सबको ध्यान से सुना और आश्वासन दिया कि वह संसद में इस मुद्दे को उठाएंगे। छात्रों ने नई शिक्षा नीति (एनईपी) के बारे में खुलकर बात की। उन्होंने पीएचडी घोटाले और दलित और ओबीसी छात्रों के खिलाफ व्यवस्थित भेदभाव पर चर्चा की। मानसून सत्र 22 जुलाई से शुरू हो रहा है, और हमें उससे पहले एक विस्तृत रिपोर्ट तैयार करने के लिए कहा गया है।

चूंकि ये मुद्दे कांग्रेस-भाजपा प्रतिद्वंद्विता से संबंधित नहीं हैं, इसलिए क्या मैं पूछ सकता हूं कि इन्हें सुलझाने में आपको एबीवीपी का समर्थन है?

नहीं, हमें एबीवीपी से कोई समर्थन नहीं मिलता है। वास्तव में, वे अक्सर छात्रों के हितों के खिलाफ काम करते हैं और विश्वविद्यालय प्रशासन के साथ मिलीभगत करते हैं।

"मुद्दे उठाता रहूंगा। आलोचकों के साथ बहस के लिए हमेशा तैयार रहता हूं। जब छात्रों की बात आएगी, हम उनकी समस्याएं उजागर करने और उन्हें हल करने के लिए हर संभव प्रयास करेंगे। ईमानदारी से कहूं, तो मुझे परवाह नहीं कि लोग क्या कहते है"

एनईपी को लेकर किन मुख्य बिंदुओं पर चर्चा हुई?

कई छात्रों का मानना है कि नरेन्द्र मोदी सरकार द्वारा पेश की गई नई शिक्षा नीति छात्र हितों के खिलाफ है। यह प्रशासन और पर्यवेक्षकों को अत्यधिक शक्ति प्रदान करती है जिसका इस्तेमाल कर शिक्षक मूल्यांकन प्रणाली को प्रभावित करके छात्रों को मनमाने ढंग से फेल कर सकते हैं। हमने राहुल जी को इन गंभीर खामियों के बारे में बताया।

पीएचडी घोटाले के बारे में राहुल जी ने पुष्टि की कि डीयू यूजीसी के नियमों का उल्लंघन कर रहा है। निर्धारित विभाजन- लिखित परीक्षा के लिए 70 और साक्षात्कार के लिए 30 अंक की अनदेखी की जा रही है। इससे भी खराब स्थिति यह है कि छात्रों को लिखित परीक्षा के अंक भी नहीं बताए जाते, केवल साक्षात्कार के अंक बताए जाते हैं। यह कितना उचित है?

क्या यह शिक्षकों की नियुक्ति के मुद्दे से जुड़ा है? आरोप हैं कि आरएसएस और भाजपा से जुड़े लोगों को नियुक्त और पदोन्नत किया जा रहा है। क्या इसका कोई सबूत है?

विश्वविद्यालय परिसर में हर कोई जानता है कि दिल्ली विश्वविद्यालय अब बड़े पैमाने पर आरएसएस से जुड़े लोगों द्वारा चलाया जा रहा है। पिछले कई वर्षों से, पूर्व एबीवीपी सदस्यों और आरएसएस कार्यकर्ताओं को संकाय पद मिल रहे हैं। यह प्रक्रिया तेज हुई है। लगभग हर कॉलेज में यही कहानी है। इन दिनों, परिसर में शिक्षाविदों या छात्र मुद्दों से ज्यादा चर्चा राजनीति की होती है।

इनमें से कई शिक्षक कक्षा में खुलेआम आरएसएस की विचारधारा को बढ़ावा देते हैं और छात्रों को संघ से जुड़ने के लिए प्रोत्साहित भी करते हैं। कुछ कॉलेज प्रिंसिपल अपनी संबद्धता भी नहीं छिपाते। स्वामी श्रद्धानंद कॉलेज के प्रिंसिपल को ही लें। उन्होंने खुलेआम कहा है - कई बार और वीडियो पर - कि वह संघ से हैं। उन्हें सरकार और विश्वविद्यालय से समर्थन का भरोसा है।

आपको अक्सर प्रचार चाहने वाला, छात्रों के कम समर्थन वाला करार दिया जाता है ...?

आलोचना मुझे व्यक्तिगत रूप से प्रभावित नहीं करती। लोग हर चीज की आलोचना करते हैं। यह परिसर के भीतर और बाहर दोनों जगह राजनीति का हिस्सा है। अगर आलोचना को हावी होने देंगे, तो कभी ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाएंगे। मैं मुद्दे उठाता रहूंगा। मैं आलोचकों के साथ बहस के लिए हमेशा तैयार रहता हूं। जब छात्रों की बात आएगी, हम उनकी समस्याएं उजागर करने और उन्हें हल करने के लिए हर संभव प्रयास करेंगे। ईमानदारी से कहूं, तो मुझे परवाह नहीं कि लोग क्या कहते हैं।

जेएनयू और डीयू दोनों अक्सर सुर्खियों में रहते हैं। हालांकि, जामिया जितना नहीं। आपको क्या लगता है कि जेएनयू में भाजपा छात्र चुनाव हारती रहती है, जबकि डीयू में उन्हें हराना कठिन होता है?

दिल्ली विश्वविद्यालय जेएनयू से बहुत बड़ा है। जेएनयू में करीब 8,000 छात्र हैं, जबकि डीयू में नियमित और गैर-नियमित पाठ्यक्रमों में करीब 700,000 छात्र हैं- नियमित पाठ्यक्रमों में 1.5 लाख। यही कारण है कि डीयू छात्र संघ को अक्सर दिल्ली विधानसभा का 71वां निर्वाचन क्षेत्र कहा जाता है। एबीवीपी की यहां जड़ें गहरी हैं। प्रोफेसर अपने छात्रों से एबीवीपी को वोट दिलवाते हैं। सिस्टम पर उनकी पकड़ मजबूत है, लेकिन हमने इस बार उन्हें हरा दिया। उम्मीद है कि ऐसा आगे भी करते रहेंगे।

वामपंथी पृष्ठभूमि वाले जेएनयूएसयू के पूर्व अध्यक्ष कन्हैया कुमार एनएसयूआई के प्रभारी हैं। उनका क्या प्रभाव रहा है?

हमने अनेक बदलाव देखे हैं। वैचारिक मोर्चे पर कमजोरियों को दूर किया जा रहा है; हम और अधिक आक्रामक हो गए हैं। हर कॉलेज में इकाई बना रहे हैं और संगठन में पदाधिकारी बनने की क्षमता रखने वाले छात्रों की भर्ती कर रहे हैं। ■

हर कहीं, लोग ही बेवफाई कर रहे हैं कुत्तों से

हम उनकी जगह छीन ले रहे हैं और उन्हें ही मान रहे आवारा, हमारी जीवनशैली बना रही उन्हें आक्रामक

पंकज चतुर्वेदी

शहरों-महानगरों की तो बात ही छोड़िए, अब तो गांवों तक में आवारा कुत्तों को लेकर लोगों की दो धाराएं हो गई लगती हैं। कथित तौर पर धन की प्राप्ति और राहु ग्रह की शांति के लिए तो लोग गली-मुहल्लों-सोसाइटियां में ऐसे कुत्तों को खिलाने के लिए ढूंढते रहते हैं लेकिन यह भी नहीं चाहते कि अन्य किसी भी समय ये इन्हें दिखें भी। यह टकराव रोज-ब-रोज बढ़ ही रहा है। वैसे, ऐसा सिर्फ इन कुत्तों के साथ ही नहीं है। बंदरों के साथ भी ऐसा ही है। बंदरों को हनुमान रूप में पूजने वाले लोग भी नहीं चाहते कि वे उनके मुहल्लों का रुख करें। गांवों का तो और बुरा हाल है। 'विकास' के नाम पर सब जगह जंगल काटे जा रहे, इसलिए ये बंदर बस्तियों की ओर आ गए हैं और फसलें बर्बाद कर देते हैं, इसलिए लोग इन्हें भी अनामंत्रित ही मानते हैं। यह बात दूसरी है कि किसी इलाके में किसी बंदर की मौत हो जाए, तो लोग लाल कपड़ा लपेटकर 'शव यात्रा' तक निकाल देते हैं!

लेकिन अभी यहां बात सिर्फ कुत्तों की। पर थोड़ा रुकिए, पहले तो यही तय कीजिए कि ये आवारा हैं या बेसहारा, मतलब इन्हें सहारा देने वाला कोई नहीं है। दरअसल, ये कुत्ते थे तो इसी रूप में पहले भी, लेकिन लगता है, हमारी बदलती जीवन शैली में ये भी अनामंत्रित ही हैं। इंसान और कुत्ते का साथ कोई बारह हजार साल से है। लोग कुत्ते इसलिए पालते थे कि वह शिकार करने में मदद करता था, वह घर और फसल की सुरक्षा करता था, कम भोजन में भी वफादार बने रहने का उसका गुण सब दिन रहा है।

लोग दस हजार से लेकर दो-चार लाख तक के डॉग तो अब भी पाल रहे- बल्कि यह स्टेटस सिंबल है लेकिन बेसहारा कुत्तों से उन्हें समस्या है। देश के कई इलाकों में गांव भी चूंकि शहरनुमा हो गए हैं, इसलिए घर में न पाले जाने वाले कुत्तों से वह देहरी छिन गई है जिस पर बैठकर वे बगैर पालतू बने ही चौकीदारी किया करते थे। दिल्ली, मुंबई, बेंगलुरु तो छोड़िए, छोटे-छोटे शहरों में भी बहुमंजिली इमारतें बन गई हैं जहां कुत्ते तो छोड़िए, ठेला लगाने वाले, रोजाना के जरूरत के सामने बेचने वाले बाहरी लोगों तक का प्रवेश वर्जित है, तो बेचारे कुत्तों की क्या औकात? जिस तरह इंसान को लग रहा है कि कुत्ते उसकी जगह में घुसने की कोशिश करते रहते हैं, उसी तरह कुत्तों को लगता है कि इंसान ने उनकी जगहों पर कब्जा कर लिया है। हर कुत्ते का अपना इलाका होता है और जब उनकी संख्या तेजी से बढ़ती है या दूसरे इलाके से कोई कुत्ता किसी वजह से उस इलाके में आने का प्रयास करता है, तो उनका क्षेत्र कम हो जाता है और उसी के अनुसार उनका भोजन, सोने की जगह भी सिकुड़ती है, ऐसे में वे असुरक्षित महसूस करते रहते हैं और आक्रामक हो जाते हैं। दिनोंदिन बढ़ते शहरीकरण के चलते सब चीजें बढ़ती ही जा रही हैं- शोर, ट्रैफिक, प्रदूषण, बेतरतीब पड़े कचरे से मांसाहारी खाना और फिर उसका चस्का, परिसरों में रोशनी की चकाचौंध। हम-आप तो लाइट ऑफ भी कर सकते हैं, शहरों में रहने वाले कुत्तों से लेकर चिड़िया तक को ऐसी सुविधा तो है नहीं!

बदहाली कम होते क्षेत्र और भोजन आदि की जगहों के सिकुड़ते जाने से बढ़ी असुरक्षा।

ऐसे में, अगर इधर-उधर घूमते रहने वाले कुत्ते किसी बच्चे या बुजुर्ग पर हमला करते दिख जाते हैं, तो यह आश्चर्य भी नहीं है। अगर कोई कुत्ते पर चिल्लाता है, उन्हें लात या डंडे से मारता है, उन पर पत्थर, गर्म पानी या तेजाब फेंकता है या किसी अन्य तरीके से दुर्व्यवहार करता है, तो कुत्ते खुद को या अपने पिल्लों की रक्षा करने की जरूरत महसूस करते हुए हमला कर देते हैं, तो इस पर भी नहीं चौंकना चाहिए।

वैसे, कुत्तों में पीछा करने की आदत होती है। जो लोग इन्हें देखकर दौड़ते या भागते हैं, उन्हें ये अपना शिकार बना लेते हैं। अगर कुत्ते को लगता है कि आप बलवान हैं, तो वे शायद आप पर हमला न करें।

"डॉग लवर्स कितने संवेदनशील हैं, यह कोरोना काल में दिख गया। देर रात अंधेरे में कई महंगे ब्रीड के डॉग गेट पर बांधकर छोड़े हुए मिले- लोगों ने उनसे इस तरह मुक्ति पा ली! अब जाकर स्थिति थोड़ी-बहुत सामान्य हुई है और लोग पहले की तरह घर में पालने के लिए इन शेल्टर होम से महंगे ब्रीड वाले डॉग्स ले जाने लगे हैं

इसीलिए सडक के कुत्ते बच्चों और बूढ़ों पर ज्यादा हमला करते हैं।

जो या जिनके परिवार के लोग ऐसी घटनाओं के शिकार हो चुके हैं या जिन्हें आशंका रहती है कि किसी समय ये बेसहारा कुत्ते उन पर हमला कर दे सकते हैं, उन्हें भी किसी किस्म के अतिवादी कदम उठाने से पहले यह समझना होगा कि भला लगे या बुरा, इनके साथ व्यवहार को लेकर कुछ कानून लागू हैं। उन्हें उसी किस्म का अधिकार संरक्षण प्राप्त है जिस तरह लोगों को। उन्हें जबरिया किसी जगह से बेदखल नहीं किया जा सकता- इसीलिए बहुमंजिला सोसाइटी के अंदर कोई डॉग घुस आए, तो उसे मार-पीटकर बाहर नहीं निकाला जा सकता। सोसाइटी के अंदर उन्हें कहीं भी खाना-पानी देने से परिसर में गंदगी फैलने का डर रहता है, इसलिए सोसाइटी की व्यवस्था देखने वाले लोग इसके लिए जगह निर्धारित कर देते हैं। कोर्ट के आदेश पर ही सही, कई शहरों में कुत्तों के लिए खाना देने की जगह भी समय-समय पर निर्धारित की जाती रही है। लेकिन दिक्कत यह भी है कि उन जगहों की सफाई समय पर नहीं होती, लोग खाना फेककर देते हैं, तो वह चारों ओर फैल जाता है और सब किया-धरा बेकार हो जाता है। चूंकि इनके साथ मारपीट से लेकर इनकी हत्या करने तक पर रोक है, इसलिए इस समस्या से आजिज लोगों ने समय-समय पर देश भर के कई हाईकोर्ट का दरवाजा खटखटाया। इस पर उत्तराखंड हाईकोर्ट ने जुलाई 2018 में कहा कि जानवरों को भी इंसान की ही तरह जीने का हक है। वे भी सुरक्षा, स्वास्थ्य और क्रूरता के विरुद्ध इंसान जैसे ही अधिकार रखते हैं। आखिरकार, सुप्रीम कोर्ट ने पिछले साल भी कहा कि नगरपालिकाएं या नगर निगम इनकी हत्या नहीं कर सकता।

यह जरूर है कि ये संस्थाएं एनिमल बर्थ कंट्रोल (डॉग्स) रूल्स, 2001 को भी ठीक तरीके से लागू नहीं कर रही हैं जिस वजह से यह समस्या कम होने की भी कोई आशा तो है नहीं। सुप्रीम कोर्ट समेत विभिन्न कोर्ट इन नियमों के तहत इनकी नसबंदी या बंध्याकरण पर समय-समय पर जोर देती रही हैं, पर यह कितनी ईमानदारी और किस गति से कहां चल रहा है, इसका अनुभव भी हम सबको है। इन्हें एंटी रैबीज और एंटी डिस्टेम्पर टीके भी कैसे दिए जाते हैं, यह भी हम सब जानते हैं।

इस मामले में भी स्थानीय निकाय लापरवाह हैं, यह कहने की जरूरत नहीं है। इधर हाल यह अभियान चलाने की बहुतेरी कोशिश हो रही है कि जिस तरह स्टेटस सिंबल के लिए लोग ऊंची नस्ल का डॉग पालते हैं, उसी तरह वह देसी या बेसहारा कुत्तों को भी पालें। लेकिन ऐसा करने वालों की संख्या भी बढ़ती हुई नहीं दिख रही है। इसमें शक नहीं कि जो समाज बेसहारा कुत्तों से आक्रांत दिख रहा है, उसे अपने बीच से ही इसका समाधान निकालना होगा।

वैसे, समाज से कितनी उम्मीद करनी चाहिए, इसका उदाहरण तो कोरोना काल के वक्त दिखा। दिल्ली-एनसीआर में भी डॉग्स के लिए कई शेल्टर होम हैं। अधिकतर किसी वजह से घायल हो गए या बीमार डॉग्स को ही लोग यहां पहुंचा जाते हैं या इन्हें मंगा लेने के लिए इनको सूचना देते हैं। लेकिन कोरोना काल के दौरान देर रात अंधेरे में कई महंगे ब्रीड के डॉग यहां के गेट पर बांधकर छोड़े हुए मिले- लोगों ने उनसे इस तरह मुक्ति पा ली! एक समय तो ऐसा आ गया कि कुछ शेल्टर होम में इतने डॉग्स आ गए कि उन्हें रखना-संभालना तक मुश्किल हो गया।

वैसे, बेसहारा कुत्ते देश में बड़ी समस्या तो हैं ही। बकौल विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्लूएचओ) दुनिया में 36 प्रतिशत कुत्ते के काटने से होने वाले रैबीज़ से मौत के मामले भारत में होते हैं। यह संख्या 18,000 से 20,000 है। रैबीज से मौतों में से 30 से 60 प्रतिशत मामलों में पीड़ित की उम्र 15 साल से कम होती है। ■

अब आजीविका और रोजगार पर केन्द्रित हो ध्यान

भारत में अत्यधिक गरीबी दर में उल्लेखनीय कमी आई है, लेकिन यह भी ध्यान में रखना होगा कि हमारे पास आबादी की ही सटीक जानकारी नहीं

अजीत रानाडे

भयावह दुनिया में तकरीबन 83.8 करोड़ लोग अत्यधिक गरीबी में जी रहे हैं। इनमें भारत में 7.5 करोड़ यानी 9 प्रतिशत हैं।

विश्व बैंक का हालिया अनुमान बताता है कि भारत में अत्यधिक गरीबी में रहने वाले लोगों की संख्या 2011-12 में 34.4 करोड़ से घटकर 2022-23 में 7.5 करोड़ रह गई है। यानी 11 सालों में 26.9 करोड़ लोग अत्यधिक गरीबी के दायरे से बाहर आ चुके हैं। यह शानदार और काबिले तारीफ है। अत्यधिक गरीबी की तकनीकी परिभाषा 2021 तक गरीबी रेखा को समायोजित करते हुए क्रय शक्ति के आकलन के आधार पर तय की गई है और अब यह 3 डॉलर प्रति दिन है। यह अपडेट इसलिए जरूरी था कि गरीबी से संबंधित एक अन्य अवधारणा बहुआयामी गरीबी सूचकांक (एमपीआई) और उन्नत सर्वेक्षण के जरिये खपत के आंकड़े की सटीकता में आए सुधार को भी आकलन का आधार बनाया जा सके। गैर-तकनीकी भाषा में विश्व बैंक की अत्यधिक गरीबी का मतलब है वह आय जो इतनी कम है कि उससे कोई व्यक्ति भोजन, स्वच्छ पानी, आश्रय और बुनियादी स्वास्थ्य देखभाल जैसी बुनियादी जरूरतों को भी पूरा नहीं कर पाए।

इतनी कम आय का नतीजा है लगातार भूख या कुपोषण, स्वच्छता तक पहुंच की कमी और बुनियादी प्राथमिक शिक्षा या प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा तक पहुंच न होना। यही स्थिति अगर विकट हो जाए तो भूख से मौत भी हो जाती है। इन भयावह मानदंडों के आधार पर भारत की अत्यधिक गरीबी दर अब 5.3 फीसद है। इसके अलावा, यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि चूंकि भारत में 2011 के बाद से जनगणना नहीं हुई है, इसलिए जनसंख्या या गरीबी अनुपात का सटीक आंकड़ा उपलब्ध नहीं है। फिर भी, एक मोटा-मोटा अनुमान लगाया जा सकता है। दुनिया में तकरीबन 83.8 करोड़ लोग अत्यधिक गरीबी में जी रहे हैं, जिनमें भारत में 7.5 करोड़ यानी 9 फीसद हैं। यह देखते हुए कि वैश्विक आबादी में भारत का हिस्सा अत्यधिक गरीबी में रहने वालों की कुल आबादी का दोगुना है, यह जानकर सुकून मिलता है कि अत्यधिक गरीबी से निपटने के मामले में भारत वैश्विक औसत से आगे है। लेकिन जहां तक कुल संख्या की बात है, अत्यधिक गरीबी में रहने वाले लोगों की संख्या के मामले में भारत का नंबर नाइजीरिया के बाद दूसरा है। भारत की आबादी को देखते हुए यह कोई हैरानी की बात नहीं। लेकिन याद रखा जाना चाहिए कि चीन का अनुपात शून्य फीसद के करीब है, और चीनियों ने घोषणा की है कि 2020 में ही उनके यहां से अत्यधिक गरीबी समाप्त हो गई थी।

संयुक्त राष्ट्र ने 2015 में सतत विकास लक्ष्यों (एसडीजी) की घोषणा की, जिसमें सबसे पहला लक्ष्य 2030 तक अत्यधिक गरीबी को खत्म करना है। यानी एसडीजी के मुताबिक अत्यधिक गरीबी के मामले में शून्य फीसद के स्तर पर आने के लिए हमारे पास पांच साल बचे हैं। गौर करें कि अत्यधिक गरीबी को मापने के लिए इस्तेमाल की जाने वाली गरीबी रेखा का पैमाना 2017-18 के 2.15 डॉलर से बढ़कर अब 3 डॉलर हो गया है। उस निचली सीमा के मुताबिक भारत में 2023 तक केवल 3.37 करोड़ लोग अत्यधिक गरीबी में रह रहे थे। लेकिन 3 डॉलर की उच्च रेखा अधिक उपयुक्त है क्योंकि यह सभी निम्न आय वाले देशों की औसत गरीबी रेखाओं से ली गई है और इस वजह से अंतरराष्ट्रीय तुलना अधिक वैध हो जाती है। इसमें राष्ट्रीय सर्वेक्षण के तरीके और इसके डेटा को भी ध्यान में रखा गया है।

यूएनडीपी और ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के गरीबी और मानव विकास पहल (ओपीएचआई) द्वारा

> जहां तक अत्यधिक गरीबी में रहने वालों की कुल संख्या की बात है, तो इसमें भारत का नंबर नाइजीरिया के बाद दूसरा है। याद रखें, चीन का अनुपात लगभग शून्य है, और उसने 2020 में ही अत्यधिक गरीबी खत्म करने का दावा किया है

संयुक्त रूप से विकसित एमपीआई इस संदर्भ में कहीं व्यापक पैमाना है। इसमें स्वास्थ्य, शिक्षा और जीवन स्तर को कवर करने वाले दस मेट्रिक्स का उपयोग किया जाता है। इनमें बाल मृत्यु दर, खाना पकाने के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला ईंधन, स्वच्छता और पीने के पानी तक पहुंच जैसे विशिष्ट संकेतक शामिल हैं। नीति आयोग एमपीआई को मापने के लिए 10 के बजाय 12 संकेतकों का उपयोग करता है, वह इनमें मातृ स्वास्थ्य और बैंक खाते तक पहुंच को भी जोड़ता है।

नीति आयोग के रिसर्च के मुताबिक, भारत की एमपीआई 2013-14 में 29 फीसद से घटकर 2022-23 में 11.3 फीसद रह गई। इसके मुताबिक, (जबकि जनगणना न होने से आबादी की सटीक जानकारी नहीं है) लगभग 24.8 करोड़ लोग एमपीआई गरीबी से बाहर आए। यूएनडीपी दस संकेतकों के आधार पर गणना करता है और इसी का उपयोग अंतरराष्ट्रीय तुलना के लिए किया जाता है। इसके मुताबिक 2019-21 के दौरान भारत की एमपीआई गरीबी दर 15 फीसद थी। यह नीति आयोग द्वारा गणना की गई दर से लगभग 4 फीसद ज्यादा है। चूंकि 2017-18 के लिए व्यापक उपभोग सर्वेक्षण डेटा उपलब्ध नहीं है, इस विसंगति का समाधान संभव नहीं। 2021-22 में यूएनडीपी एमपीआई हेडकाउंट अनुपात के आधार पर भारत का स्थान 109 देशों में 66वां था। विश्व बैंक ने अत्यधिक गरीबी पर अपने नवीनतम डेटा के लिए वैश्विक रैंकिंग जारी नहीं की। नीति आयोग की एमपीआई गरीबी दर के आंकड़ों के मुकाबले यूएनडीपी के आंकड़े के ज्यादा होने से विवाद खड़ा हो गया। बिजली या बैंक खातों,जो अब लगभग सबकी पहुंच में हैं, जैसे अतिरिक्त संकेतकों का उपयोग इस सूचकांक को ज्यादा आशावादी बनाता है। दूसरी ओर, राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण जैसे व्यापक सर्वेक्षणों से पता चला है कि एनीमिया और कुपोषण जैसे संकेतकों में गिरावट आई है, जो निश्चित रूप से एमपीआई को प्रभावित करते हैं।

यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि गरीबी रेखा से ऊपर जाने का मतलब यह नहीं है कि आप वापस इसके नीचे नहीं आ सकते। अगर आजीविका अनिश्चित है, तो परिवार में बीमारी या मृत्यु या नौकरी छूटने जैसे किसी भी झटके की स्थिति में उसे फिर से गरीबी में धकेल सकता है। इसलिए, हमें साथ ही साथ एक सार्थक और सार्वभौमिक सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था बनाने की जरूरत है।

राजकोषीय संसाधन सीमित हैं, सरकार एक सीमा से ज्यादा कर्ज नहीं बढ़ा सकती, इसलिए सामाजिक सुरक्षा का विस्तार करने के लिए खर्चे के मदों में फेरबदल करना जरूरी है। सामाजिक सुरक्षा और लोकलुभावनवाद समान बात नहीं। हालांकि, इसका अकेला दीर्घकालिक उपाय बड़े पैमाने पर रोजगार सृजन की स्थितियां बनाना है जो लगातार आजीविका में सुधार करे। रोजगार सृजन का मतलब हजारों छोटे उद्यमों का लगातार निर्माण और बड़े पैमाने पर कौशल और प्रशिक्षण से है।

इन सबको आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस, रोबोटिक्स और ऑटोमेशन से नई तरह की चुनौतियों का सामना करना होगा क्योंकि ये पारंपरिक नौकरियों के लिए खतरा बनते जा रहे हैं। कुल मिलाकर, हमें जल्द ही सापेक्ष गरीबी और असमानता को कम करने पर भी ध्यान देना होगा, क्योंकि उच्च आर्थिक विकास का लाभ शीर्ष पर बैठे चंद लोगों तक ही सीमित नहीं रहने दिया जा सकता। ■

डॉ. अजीत रानाडे जाने-माने अर्थशास्त्री हैं। सिंडिकेट: द बिलियन प्रेस

किसको है इस न्यू नॉर्मल का खौफ?

मौजूदा सरकार में 'न्यू नॉर्मल' सिद्धांत के तहत जो कुछ हो रहा है, उससे देश के अंदर से लेकर बाहर तक तमाम खतरे खड़े हो सकते हैं

अभय शुक्ला

साफ संदेश तिब्बत में ब्रह्मपुत्र पर चीन द्वारा बनाया जा रहा दुनिया का सबसे बड़ा बांध।

मई के पहले सप्ताह में पाकिस्तान (प्रत्यक्ष) और चीन (अप्रत्यक्ष) के साथ भारत की जोर-आजमाइश हुई जिसके बाद हमें बताया गया कि भारत अब 'न्यू नॉर्मल' दौर में आ चुका है। हालांकि हम अब भी नहीं जानते कि इस आजमाइश में कौन ऊपर रहा और किसने हाथ ऊपर उठाए! (न्यू नॉर्मल का तो पता नहीं) लेकिन निश्चित ही इस बात को पुष्ट करने के ढेरों सबूत हैं कि हम असामान्यता की नई गहराई में धंस चुके हैं।

जाहिर तौर पर हमारे प्राइम-टाइम टीवी न्यूज चैनल संघर्ष विराम के बारे में कुछ नहीं बता पाए क्योंकि वे इसके तीन हफ्ते बाद भी हर शाम युद्ध जारी रखते हैं और इसके दायरे में तुर्की को भी खींच लाने के हामी हैं। उधर, अपने प्रधानमंत्री ने अभी-अभी अपना ब्लड ट्रांसफ्यूजन कराके अपनी नसों में बहते आरबीसी को 'सिंदूर' से बदल दिया है। शायद यही वजह है कि प्रधानमंत्री जब भी उस चार दिवसीय युद्ध के बारे में बात करते हैं, तो उनका चेहरा लाल हो जाता है!

जयशंकर ने अब तक इतनी ईंटें गिरा दी हैं कि अब वे उनका इस्तेमाल बेसिरपैर की अपनी बातों की समाधि बनाने के लिए कर सकते हैं; नवीनतम ईंट (हकीकत में बोल्डर) एक डेनिश पत्रकार के इस सवाल के जवाब में गिरा कि पाकिस्तान के साथ हालिया संघर्ष के दौरान अमेरिका कहां था- हमारे विदेश मंत्री का शानदार जवाब था- 'अमेरिका संयुक्त राज्य अमेरिका में था'। कम-से-कम उन्हें भूगोल तो पता है! सुप्रीम कोर्ट ने एक प्रोफेसर की अंग्रेजी पोस्ट की बारीकियों को समझने और इसकी व्याख्या के लिए तीन पुलिस अधिकारियों की एसआईटी नियुक्त की। इस तरह शशि थरूर, चेतन भगत और जग सुरैया जैसे हमारे शब्दकोश कौशल विशेषज्ञों की जगह अब ऐसे पुलिसवालों ने ले ली है जिनकी पूरी शब्दावली ही चार अक्षरों के शब्दों से बनी होती है।

न्यू नॉर्मल के अन्य पहलू और भी परेशान करने वाले हैं। उदाहरण के लिए मैं नए-नए 'बॉयकॉट जिहाद' का जिक्र करना चाहूंगा, जिसमें हर उस देश के पर्यटन/यात्राओं का बहिष्कार करना शामिल है जो हमसे सहमत नहीं। आपकी उम्मीदों के मुताबिक ही हमारी विदेश नीति का यह आयाम विदेश मंत्रालय नहीं बल्कि 'मेक माई ट्रिप' या 'ईज माई ट्रिप' जैसी कंपनियों और अर्नब गोस्वामी, गौरव सावंत और नविका कुमार जैसे एंकरों द्वारा निर्देशित है। और इसलिए, हमने अब तक पाकिस्तान, मालदीव, बांग्लादेश, तुर्की, अजरबैजान, कनाडा का बहिष्कार कर दिया है। टीआरपी के शिकार बनने वालों की कतार में हैं: फ्रांस (राफेल का सोर्स-कोड साझा न करने के लिए), कोलंबिया (हमारे हमले में पाकिस्तानियों की मौत पर शोक जताने के लिए), दक्षिण अफ्रीका (इजरायल को इंटरनेशनल क्रिमिनल कोर्ट में घसीटने की जुर्रत करने के लिए), भूटान (हर भारतीय पर्यटक से 1200 रुपये का कर वसूलने के लिए), रूस (पाकिस्तान के साथ दो अरब डॉलर की परियोजना पर हस्ताक्षर करने के लिए), यूनाइटेड किंगडम (कोहिनूर हीरा न लौटाने के लिए), एंटीगुआ (मेहुल चोकसी को न लौटाने के लिए)। हम तो अमेरिका का भी बहिष्कार कर देते, लेकिन दिक्कत यह है कि हमारे ज्यादातर मंत्रियों के बेटे-बेटियां वहां ग्रीन कार्ड धारक हैं, जिन्हें 'मेक अमेरिका ग्रेट अगेन' कहने से पहले ही पीले या लाल कार्ड में बदल दिया जाता! बेशक, इस सूची में चीन का जिक्र नहीं है, जो हमारे आदरणीय प्रधानमंत्री के इस सिद्धांत के अनुरूप है कि चीन का नाम बेकार नहीं लेना है, यहां तक कि दर्द में भी नहीं।

जल्द ही वह समय आएगा जब ऐसा कोई देश नहीं बचेगा जहां भारतीय जा सकें, और यही बात मेरी रातों की नींद हराम कर देती है। दुनिया भर में घूमने के मौके से वंचित ये 'भक्त पर्यटक' पहाड़ों का रुख करेंगे और मेरे पुरानीकोटी जैसे गांवों में टिड्डियों की तरह टूट पड़ेंगे और हमारे छोटे-छोटे खूबसूरत बगीचों को उजाड़कर उन्हें गाजा जैसा बना देंगे। पहलगाम हत्याकांड के बाद ही यह हमला शुरू हो चुका है। शायद हिमाचल सरकार को भी कुछ ऐसा करना चाहिए जिससे वे हिमाचल का बहिष्कार कर दें, जैसे कि अगले प्रधानमंत्री के रूप में कंगना रनौत का नाम का प्रस्ताव कर देना...।

मैं इस न्यू नॉर्मल के अन्य आयाम को लेकर भी चिंतित हूं जैसे; जल बंटवारा और यहां बात केवल पाकिस्तान के साथ समझौते की नहीं। वाक्य-विन्यास में कमाल की महारत रखने वाले हमारे प्रधानमंत्री ने यह घोषणा करते हुए कि 'पानी और खून एक साथ नहीं बह सकते', सिंधु नदी का नलका बंद कर दिया। इस पर चीनी विदेश मंत्री ने जवाब दिया: 'दूसरों के साथ वैसा मत करो जैसा तुम नहीं चाहते कि कोई तुम्हारे साथ करे।' यह सैन्यवादी कन्फ्यूशियस का शांतिवादी संस्करण है: 'दूसरे तुम्हारे साथ जैसा व्यवहार करने वाले हों, उनके पहले ही तुम उनके साथ वैसा ही व्यवहार करो।'

कन्फ्यूशियस भी चीनी थे, और आज भी उनके देश में उनका बहुत सम्मान किया जाता है। मुझे इस बात की चिंता सता रही है कि कहीं राष्ट्रपति शी उनकी बातों में आकर हमारे साथ भी कुछ वैसा ही न करने लगें: तिब्बत में ब्रह्मपुत्र (यारलुंग त्सांगपो) पर दुनिया के सबसे बड़े बांध पर काम शुरू हो ही चुका है और कन्फ्यूशियस के वंशज चाहें तो इसके नतीजे हमारे लिए बेहद बुरे होंगे। चीन के पास कहीं बड़ा नलका है क्योंकि यह नदी तिब्बत से निकलती है और चीन ऊपरी देश है। चीनी विदेश मंत्री यही संदेश देना चाह रहे थे।

> तिब्बत में ब्रह्मपुत्र पर दुनिया के सबसे बड़े बांध का काम शुरू हो चुका है और चीन चाहे तो इसके नतीजे हमारे लिए बेहद बुरे होंगे। चीन के पास कहीं बड़ा नलका है क्योंकि यह नदी तिब्बत से निकलती है और चीन ऊपरी देश है

सिंधु नदी का पानी देने से इनकार करने का यह न्यू नॉर्मल हमारे उत्तरी राज्यों के लिए विनाशकारी हो सकता है। पाकिस्तान के लिए भी यही स्थिति होगी लेकिन पाकिस्तान के उलट हम एक लोकतंत्र हैं, और सरकार के लिए जनता के आक्रोश को संभालना मुश्किल होगा। दूसरी ओर, पाकिस्तान के शासक इसके नतीजों को बड़ी आसानी से झेल लेंगे क्योंकि इसके जनरलों और पंजाबी अभिजात वर्ग को पानी की जरूरत नहीं है, उन्हें तो बस स्कॉच 'ऑन दि रॉक्स' से मतलब है।

मोदी का नया जल सिद्धांत - कि नदी के प्रवाह में ऊपर स्थित देश जो चाहे, कर सकता है- हमारे अपने जल टकरावों को भी और बढ़ा सकता है। तमिलनाडु और कर्नाटक दशकों से कावेरी जल पर झगड़ रहे हैं; दिल्ली हरियाणा पर यमुना के पानी के उसके हिस्से को रोकने का आरोप लगाती है; ओडिशा और छत्तीसगढ़ महानदी में हिस्सेदारी पर दो-दो हाथ कर रहे हैं; पंजाब और हरियाणा सतलुज-यमुना लिंक नहर पर एकमत नहीं हैं।

हमारे मुख्यमंत्रियों, जिनकी रफ्तार आम तौर पर धीमी रहती है, ने जल बंटवारे पर न्यू नॉर्मल आधार पर कार्रवाई करने में बला की फुर्ती दिखाई। पाक से संघर्ष के कुछ ही दिनों बाद पंजाब के मंत्रियों ने नांगल स्थित बीबीएमबी (भाखड़ा ब्यास प्रबंध बोर्ड) परिसर पर कब्जा कर लिया, उसके महाप्रबंधक को बंद कर दिया और हरियाणा का पानी रोक दिया। इसने मोदी के सिद्धांत के तहत नदी प्रवाह में ऊपरी राज्य के रूप में अपने अधिकार का प्रयोग किया था! आमतौर पर विनम्र रहने वाले हिमाचल प्रदेश ने घोषणा की कि अगर उसे बीबीएमबी परियोजनाओं में उसका वाजिब हक नहीं मिला तो वह अपने राज्य से पानी नहीं जाने देगा।

इस न्यू नार्मल के और भी खतरनाक आयाम हैं: कैसे प्रधानमंत्री के कुछ आक्रामक बयानों ने परमाणु टकराव की आशंकाओं को खतरनाक स्तर तक बढा दिया; कैसे युद्ध का ब्योरा सिंगापुर में विदेशी प्रेस को बताया जाता है, लेकिन इस देश के नागरिकों को नहीं; कैसे दर्जनों सांसदों को यहां निलंबित किया जा सकता है और फिर उसी सरकार का बचाव करने के लिए उन्हें विदेश भेजा जा सकता है; यह पहेली कि देशभक्ति कहां खत्म होती है और राष्ट्रवाद कहां से शुरू होता है।

नए रोमांचक समय के लिए तैयार रहें क्योंकि सभी पारंपरिक ज्ञान, कूटनीति की कला और शासन के मानदंड पलटे जा रहे हैं। जैसा कि वालरस ने 'एलिस इन वंडरलैंड' में कहा है, राजद्रोह के लिए पकड़े जाने के जोखिम के बावजूद: 'अच्छी तरह सूचित होने की मेरी इच्छा वर्तमान में मेरे समझदार बने रहने की इच्छा के विपरीत है'। ■

अभय शुक्ला सेवानिवृत्त आईएएस अधिकारी हैं।
यह avayshukla.blogspot.com से लिए उनके लेख का संपादित रूप है।

कुछ गीत / यश मालवीय

चिड़ियों वाला कैलेंडर

आसमान में उड़ता दिखता
चिड़ियों वाला कैलेंडर
उड़ते उड़ते से लगते हैं
दिन तारीखें संवत्सर

गुम हो रहा समय ही
बीती सी घड़ियां गुनते गुनते
बढ़ी जा रही उमर
कि भूले बिसरे नगमों को सुनते

शब्द शब्द निःशब्द हो रहे
निचुड़ रहे अक्षर अक्षर

तुम थे तो खुशियों के घुंघरू
बजते थे कोने कोने
पूरा घर जब सो जाता था
तब जाते थे हम सोने

बरामदे, आंगन, गलियारे
होते थे कितने सस्वर

नींदों में ही सेंध लगाने
वाले सपने कहां गए
नहीं पुराने दिन आते हैं
दिन आते हैं नए नए

सूनी आंखों देख रहा है
घर ही अपना छूटा घर। ■

रचना का क्षण...

तुम जीते हो जो,
उसको भी माने दो
रचना का क्षण पकड़ो
उसे न जाने दो

पलकों पर आकाश
उठाए बैठा है
पंछी अपने पंख
फुलाए बैठा है

सपनों को सजने के
ताने बाने दो

खुद ही को
शिद्दत से जरा पुकारो तो
फागुन में सावन की झड़ी
निहारो तो

गोकुल को यूं
रंग भरे बरसाने दो

बिन रचे कुछ
ये दिन बीत न जाएं कहीं
मंगलघट ऐसे ही
रीत न जाएं कहीं

समय जा रहा है,
उसको अफसाने दो। ■

क्षमा कर देना त्रिवेणी

मैं तुम्हारा भक्त गहरा
मन पे मत लेना त्रिवेणी
अब न तट पर आ सकूंगा
क्षमा कर देना त्रिवेणी

लाश पर रख पैर साधो!
लोग तीरथ कर रहे हैं
मरा बच्चा गोद में ले
बाप मां क्या तर रहे हैं?

भक्ति लहरों पर नहीं,
है भक्ति का फेना त्रिवेणी

एक सधवा घाट पर आ
मांग का सिंदूर धोए
संत फिर भी घूमते हैं
दूध में धोए बिलोए
कह रहा है खुद भगीरथ,
स्वप्न मत सेना त्रिवेणी

बिलखता सारा समय है
चीख नभ को छू रही है
आंख से तारीख ही,
खुद खून बनकर चू रही है
खून है केवल जहां,
अब नाव क्या खेना त्रिवेणी ■

प्रेमचंद शवयात्रा की शवपरीक्षा

प्रेमचंद पर विलाप करते हुए हमें अपने लिए भी रोना चाहिए, कि हमने साहित्य के एक धुरंधर की शवयात्रा को मास्टर की शवयात्रा बन जाने दिया!

आलोक पराड़कर

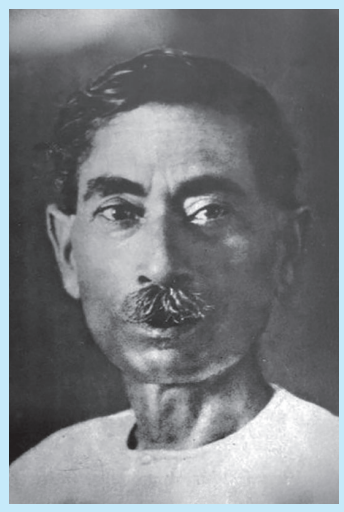

खबर बनाम प्रत्यक्षदर्शी बयान

प्रेमचंद के निधन के पूरे नौ दशक बाद सोशल मीडिया पर उस समय के 'आज' अखबार की कतरन दिखाई दी, जिसके बाद उस ज्ञात सच पर विवाद खड़ा हो गया कि प्रेमचंद के अंतिम संस्कार में 'भीड़' थी या महज चंद लोग। प्रेमचंद के पुत्र और प्रख्यात साहित्यकार अमृत राय ने स्वयं प्रेमचंद की जीवनी 'कलम का सिपाही' में उनकी अंतिम यात्रा में बीस-पच्चीस लोग होने की बात लिखी है। नंद दुलारे वाजपेयी, जयशंकर प्रसाद और बनारसी प्रसाद भोजपुरी ने भी अपने-अपने स्मृति लेखों में ऐसा ही जिक्र किया और जो स्वयं अंत्येष्टि में शामिल भी थे। इस पूरे प्रकरण में बाबूराव विष्णु पराड़कर की बात इसलिए भी सबसे अहम हो जाती है कि दोनों बनारस के समकालीन तो थे ही, न सिर्फ एक-दूसरे को अच्छी तरह जानते थे बल्कि प्रशंसक भी थे। पराड़कर जी उसी 'आज' अखबार के प्रधान संपादक थे और शवयात्रा में शामिल भी थे, जिसकी कतरन के शीर्षक से यह भ्रम फैला।

शवयात्रा अपनी हर सचाई में उदास ही तो करती है, रिक्त होने का अहसास कराती है, अवसाद देती है। बनारस ने इनसे निकलने के कुछ रास्ते बना रखे हैं, ये रास्ते मर्णिकर्णिका के आसपास चाय की दुकानों या अक्सर कचौड़ी गली की ओर निकल आते हैं। बनारस औघड़ है, रोशनी और राख के स्तंभों का शहर है, सांवले होने से बचता नहीं है, मसान में होली खेलता है!

नामवर सिंह ने एक बार मुझसे साक्षात्कार में कहा था- 'बनारस अपनी प्रतिभाओं को संभालकर रख क्यों नहीं सका? प्रेमचंद की उमर के कितने दिन बनारस में बीते और कितने दिन बाहर, इसकी गणना करनी चाहिए। प्रेमचंद की जवानी के ज्यादा दिन बनारस के बाहर ही बीते, कारण जो भी रहे हों। तुलसीदास असी घाट पर एक तरह से बनारस के बाहर रहे। कबीरदास, गौतमबुद्ध भी बनारस के बाहर रहे। मेरे मन में यह सवाल आता है कि दुनिया भर के लोग बनारस आते हैं लेकिन वे लोग जिन पर बनारस गर्व करता है, बनारस में टिक क्यों नहीं सके? रहे भी तो दांतों के बीच जीभ की तरह, या कबीर के शब्दों में कहें, तो सागर बिच मीन पियासी की तरह।' ('आज'-ताना बाना तथा 'प्रेरणा-काशी अंक' में प्रकाशित) अब जब प्रेमचंद की शवयात्रा की सचाई का विवाद छिड़ा है, बाबूराव विष्णु पराड़कर की गवाही तो सबसे जरूरी बनती ही है। दोनों बनारस के समकालीन तो थे ही, न सिर्फ एक-दूसरे को अच्छी तरह जानते थे बल्कि प्रशंसक भी थे। और फिर जिस 'आज' अखबार के समाचार ने 'कलम का सिपाही' और उसके पुत्र अमृत राय को प्रश्नांकित किया है, उस 'आज' अखबार के प्रधान संपादक थे, शवयात्रा में शामिल थे, जिसकी तस्दीक 'आज' अखबार की उस खबर से भी होती ही है। इतना ही नहीं, 'हंस' के प्रेमचंद स्मृति अंक के संपादक भी वह ही थे।

लेकिन पहले कुछ बातें तर्क और अनुमान के आधार पर। प्रेमचंद का निधन 8 अक्तूपर 1936 को हुआ था। यह जानना जरूरी होगा कि 'आज' की वह खबर जिसमें अन्त्येष्टि का विवरण है, किस तारीख को प्रकाशित है, 9 अक्तूबर 1936 को या 10 अक्तूबर 1936 को? खबर में लिखा है, मुंशी प्रेमचंद के देहांत का समाचार 'आज' के गतांक में प्रकाशित हो चुका है, तो वह पहली खबर कहां है? खबर में ही यह भी लिखा है, 'प्रेमचंद जी की लाश का फोटो उतारा गया था। श्मशान पर चिता प्रज्ज्वलित होने के बाद वहां उपस्थित साहित्यिकों का फोटो उतारा गया।' क्या ये चित्र भी 'आज' ने प्रकाशित किए थे? उस समय 'आज' कब प्रकाशित होता था-सुबह या फिर शाम को? -ये सारी बातें नागरी प्रचारिणी सभा पता कर सकती है क्योंकि वहां 'आज' की फाइल उपलब्ध है। यह जानना इसलिए जरूरी हो जाता है कि यह पता चल सके कि खबर कब लिखी गई, क्या इतना समय था कि अन्त्येष्टि में उपस्थित कोई पत्रकार कार्यालय पहुंचकर समाचार लिख सके या फिर किसी से पूछकर खबर बनाई गई, सभी जानते हैं कि उस दौर में संचार क्रांति आज जैसी नहीं थी। एक और जरूरी बात, पराड़कर जी जो अन्त्येष्टि में उपस्थित थे, क्या उन्होंने खबर लिखवाई या खबर पढ़ी थी? शायद ऐसा नहीं हो पाया होगा क्योंकि जो पराड़कर जी को जानते हैं, उन्हें यह भी पता है कि वह आत्मप्रचार से दूर रहने वाले व्यक्ति थे, वह हरगिज यह पसंद नहीं करते कि उनके अपने ही अखबार में उनके नाम के आगे कोष्ठक में 'आज' के प्रधान संपादक लिखा जाए। अशोक जी ने अपने एक संस्मरण में पराड़कर जी से हुई वार्ता का विवरण दिया है। इसमें वह लिखते हैं- 'पराड़कर जी अपने संबंध में कम बात करते थे। अखबार में काम शुरू करने पर उन्होंने मुझे पहला उपदेश या चेतावनी यह दी कि अखबार में तुम्हारा नाम न आना चाहिए।' (उत्तर प्रदेश, जून 1979)

अब कुछ प्रमाण की बातें। पराड़कर जी ने 'हंस' के प्रेमचंद स्मृति अंक का संपादन किया। यह अंक मई 1937 में प्रकाशित हुआ अर्थात नंददुलारे वाजपेयी के लेख से पहले और अमृत राय के 'कलम का सिपाही' से तो बहुत पहले। 'आज' में प्रेमचंद की कहानियां छपा करती थीं। 5 सितंबर 1920 को 'आज' का प्रकाशन आरंभ हुआ था। लक्ष्मीशंकर व्यास की 'पराड़कर जी और पत्रकारिता' (वितरकः विश्वविद्यालय प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1960) के अनुसार, 1921 में प्रेमचंद की पांच कहानियां 'आज' में छपीं- 'दफ्तरी' (24 अप्रैल), 'आत्माराम' (26 मई), 'दुस्साहस' (18 जून), 'अनिष्ठ शंका' (27 जून) और 'विध्वंस' (25 जुलाई)। हालांकि प्रेमचंद और पराड़कर जी की मुलाकात 1932 में हो सकी। व्यास जी की पुस्तक में यह भी उल्लेख मिलता है कि प्रेमचंद की मृत्यु के पूर्व 'हंस' और 'जागरण' से हानि-लाभ के प्रश्न पर हुए विवाद के निपटारे में भी पराड़कर जी की भूमिका थी। प्रेमचंद से अपने संबंध के कारण ही पराड़कर जी ने अस्वस्थता के बावजूद जैनेंद्र कुमार के आग्रह पर प्रेमचंद स्मृति अंक का संपादन किया।

अंक में प्रेमचंद पर पराड़कर जी का एक महत्त्वपूर्ण लेख 'प्रेमचंद की कृति' शामिल है। इसे उन्होंने सभी लेखों के अंत में दिया है। लेकिन प्रश्न यह है कि पराड़कर जी ने उस महत्त्वपूर्ण लेख के आरंभ की पंक्तियों में ही यह क्यों लिखा है- 'उनके जीवनकाल में हम उनका महत्त्व न समझ सके और कदर न कर सके।' अगर अन्त्येष्टि में पराड़कर जी ने श्मशान पर साहित्यिकों की भीड़ देखी होती, तो वह ऐसा लिखने को बाध्य न होते या यह लिख पाते कि मरने पर हमने उनका महत्त्व समझा। उनके लेख की यह पूरी पंक्ति इस प्रकार है- 'उनके स्वर्गारोहण के बाद आज हम उनके गुण ही गुण देख रहे हैं और पश्चाताप करते हैं कि उनके जीवन काल में हम उनका महत्व न समझ सके और कदर न कर सके।'

शायद प्रेमचंद की बे-कदरी की पीड़ा इतनी गहरी थी कि पराड़कर जी उससे उबर नहीं पा रहे थे। प्रेमचंद की अन्त्येष्टि में उपस्थित रामदास गौड़ के निधन पर 14 सितंबर 1937 को 'आज' के अंक में उन्होंने श्रद्धांजलि दी है और उसमें भी प्रेमचंद की बीमारी एवं उनकी अन्त्येष्टि का उल्लेख है। पराड़कर जी लिखते हैं- 'श्री प्रेमचंद जी की बीमारी के समय आप अत्यन्त व्याकुल हो रहे थे। कहते थे कि इनको तो किसी प्रकार बचाना ही पड़ेगा, पर कौन बचाता जब परलोक का न्योता आ गया। प्रेमचंद चले गए। श्मशान पर हमने गौड़ जी को आंसू बहाते देखा। कौन जानता था कि एक वर्ष के बाद स्वयं गौड़ जी के लिए उसी श्मशान पर उनके मित्रों, शिष्यों और भक्तों को आंसू बहाने पड़ेंगे। पर यही होना था। कुछ ही महीनों के अंत पर हिन्दी के दो सुपुत्र, साहित्य के दो धुरंधर हमें छोड़कर चले गए। आज हम उनके लिए रोएं या अपने लिए।' ये दोनों लेख पराड़कर जी के लेखों के संकलन 'संपादक पराड़कर' (संपादकः लक्ष्मीशंकर व्यास, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, प्रथम संस्करण : 1977) में शामिल हैं।

प्रेमचंद की कदर न कर सकने वालों में साहित्यिक भी थे, बनारस के भी थे , बाहर के भी। ऐसा लगता है कि ज्यादातर ने प्रेमचंद की अन्त्येष्टि में शामिल होना तो जरूरी नहीं समझा, प्रेमचंद स्मृति अंक के लिए सामग्री देने में भी कोताही की। अंक के संबंध में पराड़कर जी को भेजे 23 अप्रैल1937 के एक पत्र में श्रीपत राय लिखते हैं, 'उर्दू के अधिक लेखों की बात आते ही मैं शर्म से गड़ जाता हूं। वे लोग हिन्दी वालों की अपेक्षा सौ गुने अधिक उत्साही हैं।' (पराड़कर जी और पत्रकारिता, लक्ष्मी शंकर व्यास)

निश्चय ही प्रेमचंद पर रोते हुए हमें अपने लिए भी रोना चाहिए, हमने साहित्य के एक धुरंधर की शवयात्रा को मास्टर की शवयात्रा बन जाने दिया! ■

आलोक पराड़कर जाने-माने पत्रकार और बाबूराव विष्णु पराड़कर जी के प्रपौत्र हैं।

शोहरत के साथ आलोचनाएं भी कम नहीं

अपने पहले ही उपन्यास 'चंद्रकांता' से शोहरत के शिखर पर पहुंचे देवकीनन्दन खत्री खारिज तो हुए लेकिन डटे रहे

कृष्ण प्रताप सिंह

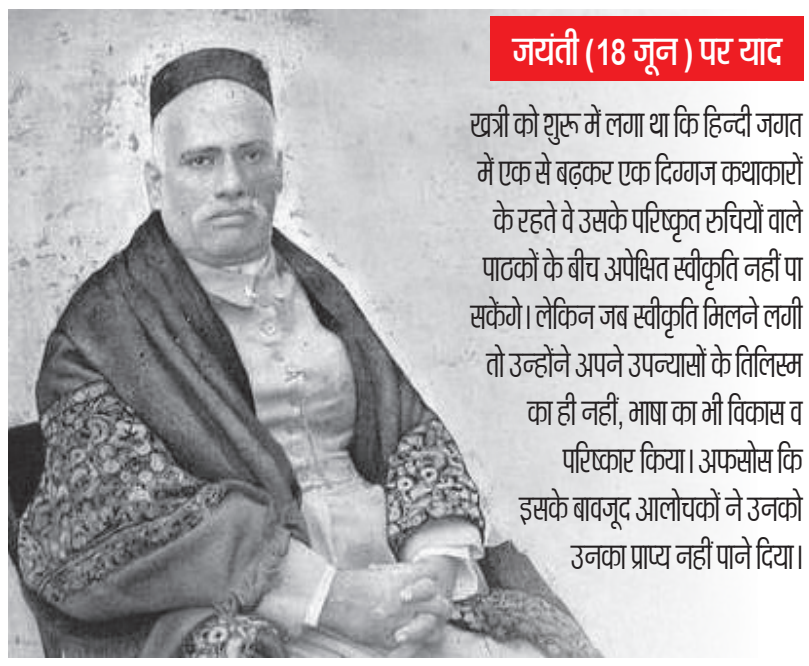

जयंती (18 जून) पर याद

खत्री को शुरू में लगा था कि हिन्दी जगत में एक से बढ़कर एक दिग्गज कथाकारों के रहते वे उसके परिष्कृत रुचियों वाले पाठकों के बीच अपेक्षित स्वीकृति नहीं पा सकेंगे। लेकिन जब स्वीकृति मिलने लगी तो उन्होंने अपने उपन्यासों के तिलिस्म का ही नहीं, भाषा का भी विकास व परिष्कार किया। अफसोस कि इसके बावजूद आलोचकों ने उनको उनका प्राप्य नहीं पाने दिया।

ऐसा बहुत कम होता है कि किसी कथाकार की कोई कृति उसके सामने ही उससे भी बड़ी हो जाए, उससे भी ज्यादा प्रसिद्धि पा जाए। हिन्दी के प्रथम तिलिस्मी उपन्यासकार देवकीनन्दन खत्री का 1888 में उपन्यास 'चंद्रकांता' आया, तो उसने कुछ ऐसा ही तिलिस्म रचा। वह रातोंरात शोहरत के शिखर पर थे। लेकिन विडंबना यह कि इस लोकप्रियता ने हिन्दी को अनेक नए पाठक और लेखक तो दिए, खत्री को जितना यश नहीं दिया, उससे ज्यादा ईर्ष्या का शिकार बनाया।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने तो यह कहकर उसको साहित्य की कोटि में रखने से ही इनकार कर दिया कि भले ही उसने प्रकाशित होते ही धूम मचा दी, लेकिन उसमें घटना प्रधान कथानक या किस्से ही तो हैं, जीवन के विविध पक्षों के चित्रण का कोई प्रयत्न नहीं।

यह तब था, जब आचार्य शुक्ल खुद भी स्वीकारते थे कि इस उपन्यास की मार्फत खत्री ने हिन्दी साहित्य को जितने पाठक दिए, किसी और ग्रंथकार ने नहीं दिए। बहुत से लोगों ने तो 'चंद्रकांता' पढ़ने के लिए ही हिन्दी सीखी।

लेकिन सिर्फ आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने ही 'चंद्रकांता' की ऐसी निर्मम आलोचना की, ऐसा भी नहीं। उसकी लोकप्रियता से ईर्ष्यालु कई अन्य महानुभाव उनसे पहले ही खत्री पर आरोपों की झड़ी लगा चुके थे। सबसे बड़ा आक्षेप, जिसे लेकर तत्कालीन साहित्यिक पत्रों में बहसें भी चलीं, यह था कि 'चंद्रकांता' के कथानक में तिलिस्म का जो ताना-बाना है, क्या वह किसी भी तरह संभव है? अगर नहीं तो क्या उसमें 'असम्भाव्यं न वक्तव्यम् प्रत्यक्षमपि दृश्यते' (असंभव आंखों देखा हुआ हो तो भी उसका वर्णन निषिद्ध है) की परंपरागत कसौटी का उल्लंघन नहीं हुआ है?

खत्री ने इस आक्षेप के जवाब में लिखा था कि जिस प्रकार 'पंचतंत्र' और 'हितोपदेश' आदि बालकों की शिक्षा के लिए लिखे गए, उसी प्रकार 'चंद्रकांता' मनोविनोद के लिए लिखी गई है। पर यह संभव है या असंभव, इस विषय में कोई यह समझे कि उसके चंद्रकांता और वीरेंद्र सिंह जैसे पात्र और उनके विचित्र स्थानादि सब ऐतिहासिक हैं, तो बड़ी भूल होगी। उन्होंने यह भी लिखा था कि कल्पना का मैदान बहुत विस्तृत है और 'चंद्रकांता' उसका बहुत छोटा-सा नमूना है और भी बहुत कुछ। इसके बावजूद बातें थमने वाली नहीं थीं। कई आलोचकों को उनकी भाषा पर गंभीर एतराज थे। आचार्य शुक्ल ने तो उनकी हिन्दी को साहित्यिक हिन्दी तक मानने से इनकार कर दिया और यह तक कह दिया था कि उन्होंने जो भाषा लिखी है, वह हिन्दी नहीं बल्कि हिन्दुस्तानी है और 'चंद्रकांता' जैसी हल्की रचनाओं में ही काम आ सकती है।

दिलचस्प यह कि ऐसा करने वाले भी शुक्ल अकेले नहीं थे। खत्री भी अपनी भाषा की आलोचनाओं को चुपचाप नहीं सह गए थे। पलटवार करते हुए कहा था कि उनके बजाय उक्त महानुभावों ने ही हिन्दी के प्रचलित स्वरूप की ओर ध्यान नहीं दिया है। इसके चलते वे अपठनीय हो गए हैं और निराश होकर 'चंद्रकांता' पर भड़ास निकाल रहे हैं।

खत्री की बात इसलिए ज्यादा तार्किक लगती है कि 'चंद्रकांता' के वक्त तक हिन्दी गद्य का कोई स्वरूप स्थिर नहीं हुआ था। उसका एक रूप भारतेन्दु और उनकी मंडली द्वारा 'प्रवर्तित' था, तो दूसरा राजा लक्ष्मण प्रसाद और तीसरा राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद द्वारा। खत्री को इनमें से कोई भी मठ गंवारा नहीं था और वह अपनी ही राह चलकर सहज-सरल हिन्दी लिखकर उसे उस पाठक वर्ग तक पहुंचा रहे थे, जिन्हें दूसरे कथाकारों ने उनके हाल पर छोड़ दिया था।

खत्री को संभवतः शुरू में लगा था कि हिन्दी जगत में एक से बढ़कर एक दिग्गज कथाकारों के रहते वह उसके परिष्कृत रुचियों वाले सुसंस्कृत पाठकों के बीच अपेक्षित स्वीकृति नहीं पा सकेंगे। लेकिन आशातीत स्वीकृति मिलने लगी तो उन्होंने अपने उपन्यासों के तिलिस्म का ही नहीं, भाषा का भी विकास और परिष्कार किया। अफसोस कि इसके बावजूद हिन्दी आलोचकों ने उनको उनका प्राप्य नहीं पाने दिया। दीगर है कि अनेक आलोचनाओं से गुजरकर 'चंद्रकांता' ने मील के ऐसे पत्थर गाड़े कि फिर उन्हें उखाड़ना संभव न हुआ। उनका व्यक्तित्व कुछ ऐसा निखरा कि हिन्दी अब तक उनका जोड़ नहीं पैदा कर पाई, न ही 'चन्द्रकांता' का।

उनका जन्म 18 जून 1861 को बिहार में समस्तीपुर से 15 किलोमीटर उत्तर स्थित कल्याणपुर प्रखंड के मालीनगर गांव स्थित अपनी ननिहाल हुआ था। मां गोविन्दी उक्त गांव के जीवनलाल मेहता की बेटी थीं और पिता लाला ईश्वरदास घरजमाई। देवकीनंदन किशोरावस्था तक शिक्षा-दीक्षा आदि के सिलसिले में समस्तीपुर, पूसा और मुजफ्फरपुर आते-जाते रहे। लेकिन बाद में नाना नहीं रहे, तो परिजनों के साथ पहले गया जिले के टिकारी, फिर वाराणसी के लाहौरी टोला में जा बसे। लाहौरी टोला अब अस्तित्व में नहीं है, लेकिन जानना दिलचस्प है कि वहां खत्री की जड़ें इस रूप में थीं कि पंजाब के मूल निवासी लाला ईश्वरदास महाराजा रणजीत सिंह के बेटे शेर सिंह के शासनकाल में कभी वाराणसी आए और वहां न सिर्फ अपने रहने का ठौर बनाया बल्कि सिक्का भी जमा लिया था। दूसरी ओर मालीनगर में उनके ससुर का देहांत हुआ नहीं कि उनकी वारिस चम्पा कुंअरि ने उनकी जमीन-जायदाद ही नहीं, घर-बार भी बेच दिए। यही कारण है कि अब वहां न देवकीनन्दन की कोई विरासत शेष है, न ही उनकी स्मृतियों के संरक्षण का कोई उल्लेखनीय उपक्रम ही होता है।

बहरहाल, उन दिनों की जरूरत और परंपरा के अनुसार, देवकीनन्दन की शुरुआती शिक्षा उर्दू और फारसी में हुई थी जबकि बाद में उन्होंने हिन्दी, संस्कृत एवं अंग्रेजी का भी भरपूर अध्ययन किया। जीवन का बड़ा हिस्सा अनुभव संचित करने में बिताने के बाद वह अपना पहला उपन्यास 'चन्द्रकांता' लिखने चले तो कई 'शुभचिन्तकों' ने उन्हें सुझाया था कि वह उसे हिन्दी के बजाय उर्दू या फारसी में लिखें ताकि बड़ी संख्या में पाठक मिलें, क्योंकि हिन्दी में तो फिलहाल, तोता-मैना, शीत-वसंत और राजा भरथरी के किस्से ही पढ़े जाते हैं और सुरुचिपूर्ण और गंभीर साहित्य के पाठकों को उंगलियों पर गिना जा सकता है।

इसके बावजूद हिन्दी के सामर्थ्य में देवकीनन्दन का विश्वास कमजोर नहीं पड़ा और उन्होंने न सिर्फ 'चन्द्रकांता' बल्कि उसके बाद के अपने सारे उपन्यास भी हिन्दी में ही लिखे। वह मानते थे कि उनके उपन्यासों की लोकप्रियता के पीछे उनका तिलिस्मी ताना-बाना ही नहीं, उनकी भाषा की सहजता भी है। उनकी मान्यता थी कि किसी विशिष्ट रचना को पढ़ते समय शब्दकोश की मदद लेने की आवश्यकता पडे.तो पड़े, उपन्यास पढ़ते वक्त उसे समझने के लिए शब्दकोश की जरूरत नहीं पड़नी चाहिए।

जितने तिलिस्मी उनके उपन्यास हैं, उतना ही तिलिस्मी उनके उपन्यासकार बनने की प्रक्रिया भी है। हिन्दी के ज्यादातर लेखकों के विपरीत उन्होंने कभी गरीबी का त्रास नहीं झेला। लेकिन बाद के दौर में जब कुछ आर्थिक संकट से सामना हुआ भी तो लेखन के जरिये पार पाया। इसी दौरान ठेकेदारी करते हुए ही धुन सवार हुई और कई-कई दिनों तक जंगलों, बीहड़ों, पहाड़ियों और प्राचीन ऐतिहासिक इमारतों के खंडहरों की खाक छानते रहे। नौगढ़ और विजयगढ़ जैसे गढ़ों एवं किलों में घूमते हुए ही उनके तिलिस्मी उपन्यास लिखने का विचार आया और कलम उठा ली। थोड़े ही अभ्यास के बाद घुमक्कड़ी के अनुभवों और कल्पनाओं के सहारे एक के बाद एक अद्भुत रहस्य रोमांच से भरे तिलिस्मी उपन्यास लिख डाले। चंद्रकांता के बाद उन्होंने 'चंद्रकांता संतति', 'काजर की कोठरी', 'नरेंद्र मोहिनी', 'कुसुम कुमारी', 'वीरेंद्र वीर' तथा 'गुप्त गोदना' जैसे उपन्यास भी लिखे।

उपन्यास लेखन में संभावनाएं देखकर उन्होंने वाराणसी के रामकटोरा मुहल्ले में 'लहरी' प्रेस की स्थापना की और वहां से न सिर्फ अपने उपन्यासों बल्कि कई वर्षों तक 'सुदर्शन' नामक पत्र का भी प्रकाशन किया। एक अगस्त 1913 को 53 वर्ष की उम्र में वाराणसी में अचानक हुई मृत्यु के कारण वह 'भूतनाथ' उपन्यास पूरा नहीं कर सके जिसे बाद में उनके बेटे दुर्गाप्रसाद खत्री ने पूरा किया। ■

संडे नवजीवन
रविवार, 15 जून, 2025 I www.navjivanindia.com
Published Date 15 June, 2025 (Sunday), Posted at LPC Delhi RMS, Delhi-06, Posting Days Friday and Saturday

मुश्किल दिनों के लिए

वे मानसून के दौर के लिए अपनी जैसी तैयारी करते हैं, वह एक उत्सव होता है जिसे 'पुरुमेंट' कहते हैं

डेनिस डी'सिल्वा

मैंने पहली बार 'पुरुमेंट' के बारे में सुना, तो इस शब्द की ध्वनि मेरे दिलोदिमाग पर छा गई। मुझे चींटी और टिड्डे की कहानी याद आ गई। सूरज चमकने पर घास काटना एक बात है; मानसून के महीनों के लिए इंतजाम करना एकदम अलग बात। और जितना मैंने जाना, 'पुरुमेंट महोत्सव' इसी सब के बारे में है।

गोवा के गांवों-कस्बों में आयोजित होने वाला यह उत्सव न सिर्फ किसी मौसम विशेष के लिए पूरी गंभीरता से की जाने वाली तैयारी को लेकर है, बल्कि दशकों से चली आ रही धूमधाम, समारोह और अनुष्ठानों के साथ यह परिवर्तन का स्वागत करने का एक प्यारा तरीका भी है। गोवा की संस्कृति में रचे-बसे, मानसून की शुरुआत के प्रति समर्पित इस उत्सव की गहराई में उतरें, तो यह आकाश में बादलों की जुटान, भीषण गर्मी में बादलों के जमीन और समुद्र के किनारों पर बरसकर खुद को खाली करने से पहले के 'अद्भुत नृत्य' के अहसास सरीखा है। यह मानसून के दिनों के लिए पहले से ही की जाने वाली तैयारियों की बात करता है।

पुरुमेंट का अर्थ है 'प्रावधान' और इसकी उत्पत्ति पुर्तगाली शब्द प्रोविसो से मानी जाती है, जो कोंकणी में 'पुरुमेंट' बन गया। यह शब्द गोवा के औपनिवेशिक और सांस्कृतिक अतीत की ओर इशारा करता है। (आखिरकार पुर्तगालियों ने गोवा पर चार शताब्दियों से अधिक समय तक शासन जो किया था!)

गोवा और कोंकण दोनों ही दक्षिण-पश्चिमी मानसून की तगड़ी मार झेलते हैं। देश का यह क्षेत्र लगातार भारी बारिश के बीच बंद पड़ी सड़कों और इसके कारण उत्पन्न होने वाली मुश्किलें को बार-बार झेलता है, और जो अक्सर पिछली गर्मियों की तुलना में कहीं ज्यादा का अहसास देता है। लाल धरती की जगह हरियाली ले लेती है और आम, ताजी मछली, जामुन और 'करवंदर' (करौंदा या काली किशमिश) आसमान के धूसर रंग में फीके पड़ जाते हैं। पानी से लबालब चावल के खेत बारिश की बूंदों से भरे होते हैं और पशुधन के चारे के रूप में बहुत कुछ नया और स्वादिष्ट तैयार हो रहा होता है।

पूरा तट किनारे पर खड़ी मछली पकड़ने वाली नावों से अटा पड़ा होता है। जब मछुआरे अगले मछली पकड़ने वाले मौसम के लिए अपने जाल और नावों की मरम्मत में व्यस्त होते हैं, उनकी महिलाएं इस मौसम से जुड़ी सदियों पुरानी रेसिपी एक बार फिर से बनाने में जुटी होती हैं। यह सब 'पुरुमेंट' का असर है। गोवा में एक बहुत पुरानी प्रथा है कि लोग सबसे अच्छी मछली, कोकम, कच्चे आम, मौसमी सब्जियां और मांस खरीदते हैं और फिर उन्हें जून से सितंबर तक चलने वाले लंबे मानसून के महीनों के दौरान इस्तेमाल वास्ते सुरक्षित रखने को तैयार करते हैं।

सबसे गर्म दिनों वाले महीनों की तेज धूप में बड़े जतन से सुखाकर, नमक में संरक्षित किए गए इस अचारनुमा व्यंजन से घरों के पिछवाड़े और बरामदे गुलजार हो जाते हैं, जो लंबी तैयारी का प्रतीक है। बेशक, एक जमाने में यह उस समय भी बड़ी जरूरत थी, क्योंकि रेफरिजरेशन के जरिये चीजों को सुरक्षित और संरक्षित करने का दौर नहीं था, वह बहुत बाद में आया। पुराने गोवा के कुछ पुराने बाशिंदे तब का 'पुरुमेंट' याद करते हैं, जो फरवरी की शुरुआत से मई के अंत तक जारी रहता था।

मानसून की शुरुआत से पहले ही मेरे गोवा वाले पड़ोसियों के घर मंद रोशनी वाले स्पेनिश बार की तरह दिखने लगते हैं जिनकी छतें चोरिज़ो मनकों और सुंदर सफेद प्याज की लड़ियों से ढक चुकी होती हैं। फर्श पर, बड़े जतन से तैयार टिकाऊ नमकीन और चटख मसालों वाली मछली तथा कच्चे आमों से भरे हुए बड़े-बड़े जार जमीन पर हर तरफ दिखाई देते हैं। बहुत धीमी प्रक्रिया से तैयार हो रहा सिरका हरी-हरी बोतलों में दिखाई देने लगा है और छोटे-छोटे स्टेनलेस स्टील के डिब्बे जब खुलते हैं, हवा में तरह-तरह के मसालों की खुशबू फैल जाती है।

सच कहूं, तो चोरिज़ो और प्रॉन बाल्चाओ अगर गर्मियों में मेरी नाक के नीचे संरक्षित किए जाते, तो मानसून तक उनका टिक पाना मुमकिन नहीं था! लेकिन मुझे लगता है कि 'पुरुमेंट' आपके कौशल की जैसी कठिन परीक्षा लेता है, उतनी ही धैर्य और अनुशासन की भी।

मानसून के दिनों में गोवा का बड़ा हिस्सा बुरी तरह अस्तव्यस्त हो जाता है: जब सड़कें जलमग्न होतीं हैं, मछली पकड़ना बंद रहता है, परिवहन बहुत सीमित और दुकानें बंद रहती हैं- 'पुरुमेंट' जीवित रहने और तंगहाली वाले महीनों में पेट भर खाने के वास्ते एक जरूरी इंतजाम का नाम या अभ्यास होता है। इसमें पूरे परिवार की भागीदारी रहती है, जिसमें बड़े लोग नमकीन और अचार तैयार करने जैसा बारीकी वाला काम करते हैं और परिवार के छोटे सदस्यों का काम इस दौरान पक्षियों को भगाने के लिए बिजूका बनकर तैनात हो जाने का होता है, ताकि जमीन पर सूख रहे उत्पादों की उनसे रक्षा की जा सके।

जो लोग 'पुरुमेंट' की तैयारी के लिए स्वयं समय नहीं निकाल पाते हैं, 'पुरुमेंटचेम उत्सव' दरअसल उन्हीं के लिए है, जो आम तौर पर मई के अंत में चर्च उत्सव के साथ आयोजित किया जाता है। इन उत्सवों में गोवा भर से तो कारीगर आते ही हैं, कोंकण से भी कारीगर और विक्रेता इसमें शामिल होते हैं, और गोवा वालों की रसोई के लिए सूखी मछली, लाल चावल, कोकम, मिर्च के साथ ही खमीर वाला सामान और अन्य आवश्यक वस्तुओं को सुरक्षित रखने वाले सिरेमिक कंटेनर की आपूर्ति करते हैं।

उत्तरी गोवा में, पणजी के प्रतिष्ठित अवर लेडी ऑफ द इमैकुलेट कॉन्सेप्शन और दक्षिण गोवा के मडगांव के होली स्पिरिट चर्च में मई के अंत में पैरिश उत्सव आयोजित किए गए। इन्हें विक्रेताओं के वास्ते स्टॉल लगाने के लिए आदर्श अवसर और शहरवासियों के लिए किसी ज्ञात स्थान पर सबकुछ मिल जाने का सबसे आसान तरीका माना जाता है। स्थानीय बाजारों में भले ही कुछ ऐसी चीजें मिल जाएं, जो पारंपरिक रूप से 'पुरुमेंट' का हिस्सा हुआ करती हैं, लेकिन वास्तव में यह उत्सव ही हैं जो हमारी परंपराओं को, उनके बारीक तत्वों को जीवित रखते हैं।

गोवा के उत्तर और महाराष्ट्र के कोंकण बेल्ट में समुद्र तट पर बसे कई गांवों में भी ऐसी ही प्रथा का पालन किया जाता है। वहां इसे 'अगोतिचा समान' कहते हैं जिसका मोटे तौर पर अनुवाद 'मानसून का इंतजाम' होता है। यहां तक कि मुंबई जैसे शहरों में भी इसी परंपरा के तहत कोली या मछुआरे भीषण गर्मियों वाले दिनों का इस्तेमाल बड़ी मात्रा में मछलियां और झींगा सुखाने के लिए करते हैं, जो 'अगोतिचा समान' का मुख्य आधार है।

बॉम्बे के समुद्र तटों पर, नमकीन मछली पकने की दूर से पहचानी जाने वाली महक गर्मियों की खासियत है। लेकिन यह सिर्फ कोली ही नहीं है। पठारे प्रभुओं से लेकर कोंकणी मुसलमानों तक कई समुदाय मानसून में सूखी मछली की तैयारी का रुख करते हैं। आज बेहतर सड़कों, रेफरिजरेशन की सुविधा और मानसून प्रबंधन के तरीकों से 'पुरुमेंट' पहले जैसा भले न रह गया हो, लेकिन यह स्थानीय चर्च-सह-पुरुमेंटचेम त्योहार ही हैं जो संरक्षण की इस खूबसूरत समावेशी प्रथा को न सिर्फ संरक्षित रखे हुए हैं, बल्कि हमें संसाधन संपन्न उन लोगों की याद भी दिलाते हैं जो जमीन के करीब तो रहते ही हैं, इसके हमेशा बदलते मौसमों के प्रति सजग और सतर्क भी रहते हैं। ■

तैयारी भी चुनौती मानसून आने के पहले अपनी-अपनी नावें संभालना, उन्हें किनारे पर सुरक्षित बांध देना भी मछुआरों के लिए एक बड़ी चुनौती है। यही वह समय होता है जब पूरा तट नावों से अटा पड़ा होता है और मछुआरे अगले मौसम के लिए अपने जाल और नावों की मरम्मत में व्यस्त होते हैं।

परंपरा का उत्सव पुरुमेंट उत्सव में गोवा के विभिन्न इलाकों से कलाकार, वास्तुशिल्पी, हाथ से कलात्मक चीजें बनाने वाले घरेलू सदस्य ही नहीं, दुकानदार भी शामिल होते हैं। परंपरा के अनुसार यह समय सबसे अच्छी मछली, कोकम, कच्चे आम, सब्जियां और मांस खरीदने और उन्हें जून से सितंबर तक चलने वाले लंबे मानसून के दिनों में इस्तेमाल लायक बनाकर सुरक्षित रखने की तैयारी करने का होता है।

गोवा की संस्कृति में रचे-बसे इस उत्सव की गहराई में जाएं, तो यह आकाश में बादलों की जुटान, भीषण गर्मी में बादलों के जमीन और समुद्र के किनारों पर बरसकर खुद को खाली करने से पहले के 'अद्भुत नृत्य' के अहसास जैसा है। यह मानसून के दिनों के लिए की जाने वाली तैयारियों के बारे में भी है

Nehru centre

नेहरू सेंटर ऑडिटोरियम

वेस्टर्न एक्सप्रेसवे पर
मुंबई के हृदयस्थल में,
बीकेसी से सटे,
एयरपोर्ट के पास

इन सबके लिए सर्वोत्तम:
- कॉरपोरेट/एचआर मीटिंग, सेमिनार या ट्रेनिंग सेशंस
- व्याख्यान
- बुक लॉन्च/ बुक रीडिंग
- पैनल डिस्कशन
- साहित्यिक/सांस्कृतिक कार्यक्रम

ऑडिटोरियम उपलब्ध है
-पूरा दिन सुबह 10 बजे से शाम 8 बजे
-आधा दिन सुबह 10 बजे से दोपहर 2 बजे या शाम 4 बजे से शाम 8 बजे

बुकिंग के लिए कृपया संपर्क करें: +91 22-26470102, 8482925258
या हमें लिखें: contact@nehrucentre.com
नेहरू सेंटर ऑडिटोरियम, दूसरा फ्लोर, एजेएल हाउस, 608/1ए, प्लॉट नं. 2, एस. नं. 341, पीएफ ऑफिस के पास, बांद्रा, मुंबई- 400051